काव्य मुक्ताहार

सम्पादक

श्रीरमेशदत्त पाठक, एम. ए., एल-एल. बी.
प्रधान-हिन्दी अध्यापक,
रोबर्टसन कॉलेज

श्रीविनायकदत्त ठाकुर, बी० ए०, विशारद,
हिन्दी-अध्यापक, सेंट पॉलस हाईस्कूल
रायपुर

प्रकाशक

पी० एम० द्वादशश्रेणी ऐण्ड को० लि०,
अलीगढ़

H491.2
P29K

मूल्य १॥=)

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186766

UNIVERSAL
LIBRARY

काव्य मुक्ताहार

सम्पादक

श्रीरमेशदत्त पाठक, एम . ए., एल-एल. बी.
प्रधान-हिन्दी-अध्यापक,
रोबर्टसन कॉलेज, जबलपुर ।

श्रीविनायकदत्त ठाकुर, बी० ए०, विशारद,
हिन्दी अध्यापक, सेंट पाल्स हाई स्कूल
रायपुर

प्रकाशक

पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड को० लि०,
अलीगढ़

१९४४ मूल्य १॥।=)

This form Printed by M. Ram Narayan
at the Hira Lal Printing Works, Aligarh.
44 3000

दो शब्द

हिन्दी कविता का यह संग्रह हाईस्कूल के विद्यार्थियों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया गया है। इसमें हिन्दी के २५ प्रमुख और प्रतिनिधि कवियों की ही रचनाएँ स्थान पा सकी हैं। संकलन में इस बात का विचार रखा गया है कि विद्यार्थियों को हिन्दी के अन्तर्गत आनेवाली सभी साहित्यिक भाषाओं एवं काव्य की प्रायः सब धाराओं का परिचय हो सके। इस बात का भी विशेष विचार रखा गया है कि कवियों की रचनाओं से जहाँतक हो सके ऐसे ही स्थल लिये जावें, जिनसे उनके रचयिताओं की आत्मा का थोड़ा-बहुत परिचय हो सके। हाँ, अश्लील अंश किसी भी अवस्था में नहीं लिये गये हैं।

पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट, रस, अलंकार, छंद का आवश्यक ज्ञान कराने का प्रयत्न किया गया है। कवि-परिचय भी परिशिष्ट के अन्तर्गत है। परिशिष्ट प्रस्तुत करने में श्रीविनायकदत्त ठाकुर का ही विशेष हाथ रहा है, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीरमेशदत्त पाठक

विषय-सूची।

संख्या	नाम कवि	पृष्ठ
१	चंद	१
२	विद्यापति	३
३	जायसी	५
४	कबीर	९
५	सूरदास	१२
६	भक्त मीरा	२१
७	गोस्वामी तुलसीदास	२३
८	रहीम	३५
९	केशवदास	४१
१०	रसखान	४८
११	सेनापति	५१
१२	बिहारी	५५
१३	भूषण	६०
१४	पद्माकर	६४
१५	दीनदयाल गिरि	६८
१६	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	७२
१७	कविवर श्रीधर पाठक	७५
१८	अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)	७७
१९	बा० जगन्नाथप्रसाद जी 'रत्नाकर'	८५

संख्या	नाम कवि			पृ०
२०—	बा० मैथलीशरण गुप्त	...	....	९१
२१—	बा० जयशंकर 'प्रसाद'	....	..	९९
२२—	पं० सुमित्रानन्दन पंत	....	....	१०१
२३—	पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	....	....	१०७
२४—	श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान	....	....	११०
२५—	श्रीमती महादेवी वर्म्मा	....	....	११५
	परिशिष्ट १ कवि-परिचय	....	....	१–२५
	,, २ रस	....	....	१–६
	,, ३ अलङ्कार	....	....	१–८
	,, ४ छन्द	....	....	१–१२

॥ ओ३म् ॥

काव्य मुक्ताहार

चन्द

[१]

सरस्वती की स्तुति

मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा,
अब्धा बुधा गोपनी।
सेतं चीर समीर नीर गहिरा,
गौरी गिरा जोगनी॥
वीना पानि सुवानि जानि दधिजा,
हंसा रसा आसिनी।
लंबोजा चिहुरार भार जघना,
विघ्ना घना नासिनी॥

[२]

जैतराव और खुरासानखाँ का तुमुल युद्ध

सिर धूनत पति साह, घाह सुनि सेना सत्थिय।
लुत्थि लुत्थि मुह धार, परे वत्थन सों वत्थिय॥
जम सों जम आहुरै, सूर जुट्टै दोइ घुट्टै।
नई गंठि तन जोग, सूर मुण्डावलि घुट्टै॥
घुरसान जैत अव्वू धनिय, धार धार मुह कट्टिया।
ऐसो न जुद्ध दिष्यौ सुन्यौ, दारुन मेघ दवट्टिया॥
मनु द्वादस सूरज्ज, हत्थ चन्द्रमा महासर।
जिन उप्पर षल मलै, ताहि धर गोरिय सुभर॥
कटक कुहू किलकार, सार परमोर बजायौ।
भिरि भज्यौ सुरतान, एक एकह मुष धायौ॥
सिर सार धार बूढ्यो प्रहर, तब दौरयौ पज्जून भर।
निसुरत्ति षान लष्षह वली, लष्ष एक पाइल सुभर॥

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित
(संपादित 'पृथ्वीराज रासो' के आधार पर)

(३)

विद्यापति

देवी-वन्दना

जय जय भैरवि असुर-भयाउनि पसुपति-भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया॥
वासर रैनि सवासन सोभित चरन चन्द्रमनि चूड़ा।
कतओक दैत्य मारि मुँह मेलल कतओ उगिल कैल कूड़ा॥
सामर बरन, नयन अनुरंजित जलद-जोग फुल कोका।
कट कट विकट ओठ-पुट पाँड़रि लिधुर-फेन उठ फोका॥
घन घन घनए घुघुर कत बाजए हन हन कर तुअ काता।
विद्यापति कबि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरु जनि माता॥

स्फुट पद

[१]

एत जप तप हम किअ लागि कैलहु,
कथिला कएलि निव दान।
हमरि धिया के एहो बर होएता,
अब नहिं रहत परान॥
हर के माय बाप नहिं थिकइन,
नहिं छइन सोदर भाय।
मोर धिया जों सासुर जैतो,
बइसति ककर लग जाय॥

घास काट लौती बसहा चरौती,
कुटती भाँग धतूर।
एको पल गौरा बैसहु न पौती,
रहती ठाढ़ि हजूर॥
भन विद्यापति सुनु ए मनाइनि,
दृढ़ करु अपन गेयान।
तीन लोक के एहो छथि ठाकुर,
गौरा देवी जान॥

[२]

माधव हमर रटल दुर देस।
केओ न कहइ सखि कुसल-सनेस॥
जुग जुग जिवथु बसथु लख कोस।
हमर अभाग हुनक नहिं दोस॥
हमर करम भेल बिहि बिपरीत।
तेजलनि माधव पुरविल पिरीत॥
हृदयक बेदन बान समान।
आनक दुःख आन नहिं जान॥
भनइ विद्यापति कबि जयराम।
कि करत नाह दैव भेल बाम॥

मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा बादल की वीरता

पदमावति के भेस लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खाँड़ै काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े॥
लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लाग गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। गहन छूटि पुनि चाहै गहा॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ, इहै मैदानू॥
तुइ अब राजहि लेइ चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा॥

आजु खड्ग चौगान गहि, करौं सीस-रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं, हाल जगत महँ होइ॥१॥

तब अगमन होइ गोरा मिला। तुइ राजहि लेइ चलु, बादला॥
पिता मरै जो सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत के माथा॥
मैं अब आउ भरी आ भूँजी। का पछितावा आउ जौ पूजी?॥
बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी। तुम जिनि रोयहु तौ मन बूझी॥
कुँवर सहज सँग गोरा [redacted]हे। और बीर बादल सँग कीन्हे॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा। चला लिए आगे करि राजा॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा॥

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जग कारी, होति आव दिन साँझ॥२॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेलौं, करौं आजु रन-साका॥

हौं कहिए धौलागिरि गोरा। टरौं न टारे, अंग न मोरा॥
ओनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहिं बान मेघ-झरि लाई॥
डोलै नाहि देव जस आदी। पहुँचे आइ तुरुक सब बादी॥
हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी। चमकहिं सेल बीजु कै बानी॥
सोझ बान जस आवहिं गाजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा॥
नेजा उठे डरै मन इंदू। आइ न बाज जानि कै हिदू॥
गौरै साथ लीन्ह सब साथी। जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही। आवत आइ हाँक रन दीन्ही॥

रुंड मुंड अब टूटहि, स्यो बखतर औ कूँड़।
तुरय होहिं बिनु काँधे, हस्ति होहिं बिनु सूँड़॥३॥

भइ बगमेल, सेल घनघोरा। औ गज-पेल, अकेल सो गोरा॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार-पहार जूझ कर काँधा॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे॥
जैसे पतंग आगि धँस लेई। एक मुवै, दूसर जिव देई॥
टूटहि सीस, अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं कंध निरारै॥
कोई परहिं रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहिं माते॥
कोइ खुरखेह गएं भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल॥४॥

गोरै देख साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा॥
कोपि सिंघ सामुँह रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन बिदारै घटा॥

जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़ै टूटै असवारू॥
लोटहिं सीस कबंध निनारे। माठ मजोठ जनहुँ रन ढारे॥
खेलि भाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुधिर भभूका॥

भइ अज्ञा सुलतानी, "बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे, लिए पदारथ साथ" ॥५॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा॥
तुरुक बोलावहिं बोले बाँहाँ। गोरै मीचु धरी जिउ माहाँ॥
मुए पुनि जूझि जाग जगदेऊ। जियत न रहा जगत महँ केऊ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोंछ हाथ को मेला!
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा॥
करै सिंघ मुख सौंहहिं दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी॥

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुधिर न धोवौं, तौ लगि होइ न रात॥६॥

मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी॥

भाँट कहा, धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै, तुरय देत है पाँव॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड्ग जनु परा निहाऊ॥
बज्र क साँग बज्र कै डाँड़ा। उठी आगि तस बाजा खाँड़ा॥

मानहुँ बज्र बज्र सौं बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा॥
दूसर खड्ग कंध पर दीन्हा। सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा॥
तीसर खड्ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत, घाव न आवा॥

तस मारा हठि गौरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरे नहिं आवै, सिंघ सदूरहि लागि॥८॥

तब सरजा कोपा धरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूटि सिर गाजा॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू। स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गइ दीठि, फिरा संसारू॥
भइ परलय अस सबही जाना। काढ़ा खड्ग सरग नियराना॥
तस मारेस स्यों घोड़ै काटा। धरती फाटि सेस-फन फाटा॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥९॥

('पद्मावत' से संकलित)

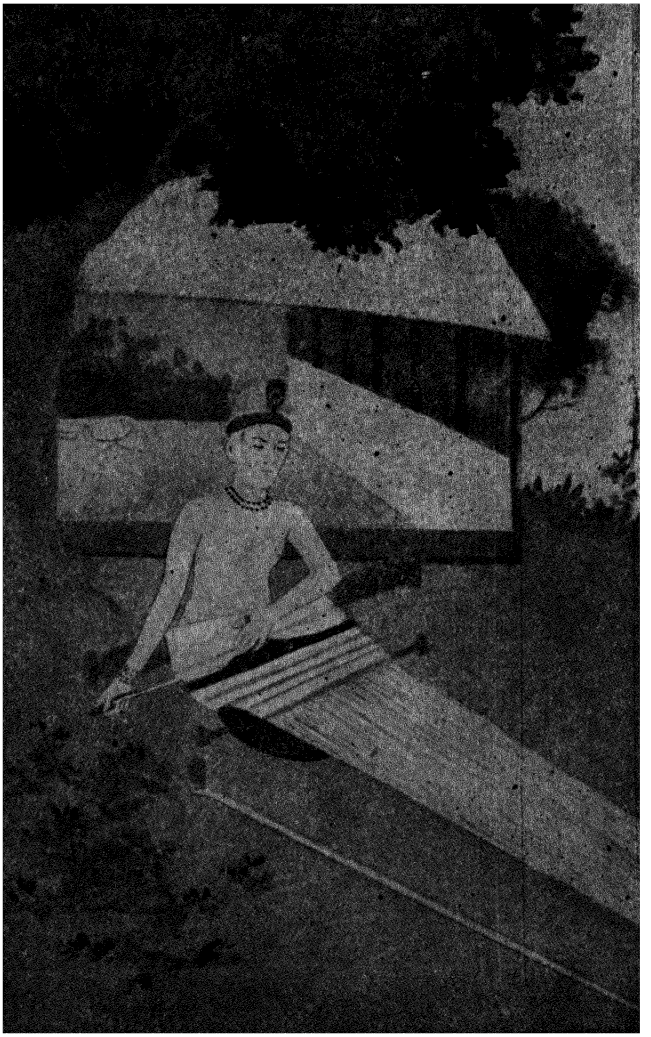

महात्मा कबीरदास

कबीर

साखी

साहेब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ, साहेब खरा रिसाय॥
साहेब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छोड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर॥
जाको राखै साइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥
तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूँढ़ै घास॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना, कागा हंस न होय॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥
लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी होगई लाल॥
साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का छाननहार॥
गुरु गोबिंद दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिंद दियो बताय॥
मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुन लिये, कालिह हमारी बार॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिनु प्रान॥

नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेंव।
ना मैं देखों और को, ना तोहिं देखन देंव॥
पपिहा का पन देखकर, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंव॥

बंधे को बंधा मिलै, छूटे कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय॥
सिंहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर॥
एक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं॥

सेमर सुबना सेइया, दुइ ढेंढी की आस।
ढेंढी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास॥
दव की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लोहार घर, डाहै दूजी बार॥

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से, लोह भसम ह्वै जाय॥
कबिरा मन परबत हता, अब मैं पाया कानि।
टाँकी लागी सब्द की, निकसी कंचन खानि॥
पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
तातें या चाको भली, पीसि खाय संसार॥

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

पद

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिंदुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करैं सगाई॥
बाहर से एक मुर्दा लाए धोय धोय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं घर भर करै बड़ाई॥
हिन्दुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥
करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिष्ठ से पडित ज्ञानी सोध के लगन धरी।
सीता-हरन मरन दसरथ को बन में बिपति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरग चरी।
सीया को हरि लैगो रावन सुवरन लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचंद बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरगिट जोनि परी॥
पांडव जिनके आप सारथी, तिनपर बिपत्ति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो, जदुकुल नास करी॥
राहु केतु और भानु चंद्रमा बिधि संजोग परी।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो होनी हैके रही॥

सूरदास

बाल-कृष्ण

[१]

जसोदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसे सही परत है दूध दही की हानि॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि।
गोरस खाय खवावै लरिकन भाजत भाजन भानि॥
मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो जानि।
सोई जाइ तुम्हारे ढोटा लीनो है पहिचानि॥
बूझी ग्वालिन घर में आयो नेकु न शंका मानी।
'सूर' श्याम तब उतर बनाओ चींटी काढ़त पानी॥

[२]

जागिये गोपाल लाल ग्वाल द्वार ठाढ़े।
रैन अन्धकार गयो, चन्द्रमा मलीन भयो।
तारागन देखियत नहिं, तरनि किरन बाढ़े॥
मुकुलित भए कमल-जाल, गुञ्ज करत भृङ्ग-भाल।
प्रफुल्लित बन पुहुप डार, कुमुदिनी कुमिलानी॥
गन्धर्व गुन-गान करत, स्नान दान नेम धरत।
हरत सकल पाप, बदत बिप्र बेद-बानी॥
बोलत नँद बार बार, देखैं मुख तुव कुमार।
गायन भई बड़ी बार, वृन्दावन जैबे॥
जननी कहत उठो स्याम, जानत जिय रजनि जाम।
'सूरदास' प्रभु कृपालु, तुमको कछु खैबे॥

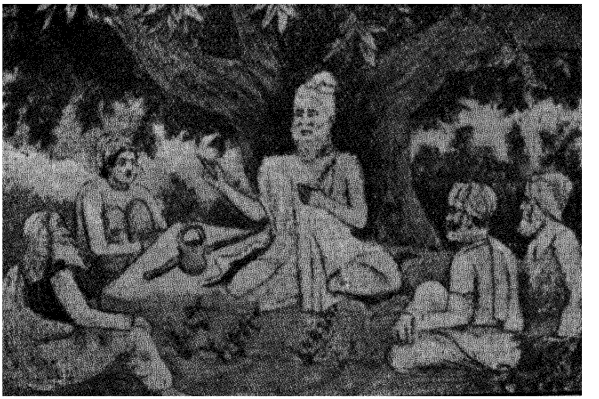

महात्मा सूरदास

[३]

लालन तेरे मुख पर हौं वारी।
बाल-गोपाल लगे इन नैननि रोगु बलाइ तुम्हारी॥
लट लटकन मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।
मनहुँ कमलअलि सावक पंगति उड़त मधुर छबि भारी॥
लोचन ललित कपोलनि काजर छबि उपजत अधिकारी।
मुख सनमुख और रुचि बाढ़ति हँसत दै दै किलकारी॥
अल्प दसन कलबल करि बोलनि बिधि नहिं परत बिचारी।
निकसति दुति अधरनि के बिच ह्वै मानो विधु में बीजु उज्यारी॥
सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी।
'सूर' सिंधु की बूँद भई मिलि मति गति दीठि हमारी॥

[४]

हौं दुहिहौं मोहिं दुहन सिखावहु।
कैसे धार दूध को बाजत सोइ सोइ बिधि तुम मोहि बतावहु॥
कैसे दुहत दोहिनी घुटुवन कैसे बछरा थनहि लगावहु।
कैसे लै नोई पग बाँधत कैस पगैया लै अटकावहु॥
निकट भई अब साँझ कन्हैया गाइन पै कहुँ चोट लगावहु।
'सूर' स्याम सौं कहत ग्वाल सब धेनु दुहुन प्रातहि उठि आवहु॥

[५]

कन्हैया! तू नहिं मोहि डरात।
षटरस धरे छोड़ि कत पर-घर चोरी करि करि खात॥
बकति बकति तोसौं पचिहारी नैकहु लाज न आई।
ब्रज परगन सरदार महर, तू ताकी करत नन्हाई॥

पूत सपूत भयो कुल मेरो अब मैं जानी बात।
'सूर' स्याम अबलौं तोहिं बकस्यों तोरी जानी घात॥

[६]

लोगन कहत झुकति तू बोरी।
दधि माखन गठि दै राखत करत फिरत सुत चोरी॥
जाके घर की हानि होत नित सो नहिं आनि कहै री।
जाति-पाँति के लोगन त्यागत और बसै है नेरी॥
घर घर कान्ह खान को डोलत अतिहि कृपन तू है री।
'सूर' स्याम को जब जोइ भावै तबहीं तू सोइ दै री॥

[७]

मोहन काहे न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावत महरि हाथि लिये माँटी॥
महतारी कौ कह्यो न मानत कपट-चतुराई ठाटी।
बदन पसारि दिखाय आपने नाटक की परिपाटी॥
बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम-जामिनि नहिं फाटी।
'सूरदास' नँदरानि भ्रमित भई कहत न मीठी खाटी॥

[८]

जेंवत कान्ह-नन्द इक ठौरे।
कछुक खात लटपटात दुहुँ कर बालक हैं अति भोरे॥
बड़ो कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टुक टोरे।
तीछन लगत नयन भरि आये रोवत बाहर दौरे॥
फूँकत बदन रोहिनी माता लिये लगाय अँकोरे।
'सूर' स्याम कौ मधुर कौरि दै कीन्हे मात निहोरे॥

रूप-माधुरी

[१]

सखी री सुन्दर ताकौ रंग।
छिन-छिन माँहि परत छबि औरै कमल-नयन कै अंग॥
परमित करि राख्यौ चाहति हौ तुमहिं लागि डोलै संग।
चलत निमेष बिसेष जानियत भूलि भई मति भंग॥
स्याम सुभग के ऊपर बारौं आली कोटि अनंग।
'सूरदास' कछु कहत न आवै गिरा भई गति-पंग॥

[२]

देखु सखी मोहन मन चोरत।
नैन कटाच्छ बिलोकनि मधुरी सुभग भृकुटि बिबि मोरत॥
चंदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अति सुखदाई।
मानहु अर्द्धचन्द्रतट अहिनी सुधा चोरावन आई॥
मलयज भाल भृकुटि की रेखा कहि उपमा एक आवत।
मानो एक सँग गंग जमुन नभ तिरछी धार बहावत॥
भृकुटी चारु निरखि बृज-सुन्दरि यह मन करत बिचार।
'सूरदास' प्रभु सोभा-सागर कोउ न पावत पार॥

[३]

हरि-मुख किधौं मोहनी माई।
बोलत बचन मंत्र सौं लागत गति-मति जात भुलाई॥
कुटिल अलक राजत भ्रुव-ऊपर जहँ तहँ रहि बगराई।
स्याम फाँसि मन करष्यौ हमरौ अब समझी चतुराई॥

कुण्डल ललित कपोलन झलकत इनकी गति मैं पाई।
'सूर' स्याम जुवती-मन-मोहति जे सँग करत सहाई॥

मुरली-माधुरी

[१]

जब तैं बंसी स्रवन परी।
तबहीं तै मन और भयौ सखि मो तन-सुधि बिसरी॥
हा अपने अभिमान रूप-मधुता के गर्व भरी।
नैकु न कह्यौ कियौ सुनि सजनी बादिहि आपु ढरी॥
बिन देखे अब स्याम-मनोहर जुग-भरि जाति घरी।
'सूरदास' सुन आरज-पथ तै कछु न चाँड़ सरी॥

[२]

मुरली अधर बजी बलवीर।
नाद सुनि बनिता विमोही घर बिसारे चीर॥
नैन मूँदि समाधि धरि खग रहे ज्यों मुनि धीर।
डोलत नहिं द्रुम, लता, बिथकी मंद-गंध-समीर॥
धेनु तृन तजि रहे ठाढ़े बच्छ तजि मुख छीर।
'सूर' मुरली नाद सुनि थकि रहत जमुना नीर॥

भ्रमर-गीत

[१]

हमारे कौन जोग-व्रत-साधै!
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा कौ, को इतनौ अवराधै।
जाकी कहूँ थाह नहिं पैये अगम, अपार अगाधै॥

गिरधरलाल छबीले मुख पै इते बाँध को बाँधै ?
आसन, पवन, भूति, मृगछाला, ध्याननि को अवराधै ?
'सूरदास' मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै ॥

[२]

ऊधौ ! मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतौ सो गयो स्याम संग, को आराधे ईस ॥
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु यथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटक रहै आसा लगि जीवहि कोटि बरीस ॥
तुम तौ सखा स्याम-सुन्दर के सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' करि रस की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस ॥

[३]

निसिदिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहत पावस ऋतु हमपै जबतें स्याम सिधारे ।
दृग अञ्जन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भये कारे ॥
कंचुकि नहिं सूखत सुनि सजनी ! उर बिच बहत पनारे ।
'सूरदास' प्रभु अंबु बढ़्यौ है गोकुल लेहु उबारे ।
कहँलौं कहौं स्याम-घन-सुन्दर बिकल होत अति भारे ॥

[४]

ऊधौ ! अब नहिं स्याम हमारे ।
मधुबन बसत बदलि से गे वे, माधव मधुप तिहारे ॥
इतनिहिं दूरि भये कछु औरे जोहि-जोहि मगु हारे ॥
कपटी-कुटिल काक-कोकिल ज्यौं अन्त भये उड़ि न्यारे ॥

रस लै भँवर जाय स्वारथ-हित, प्रीतम चितहिं बिसारे।
'सूरदास' उनसौं का कहिये, जे तनहू मन कारे॥

[५]

सखीरी स्याम कहा हित जानै।
कोऊ प्रीति करे कैसेहू, वे अपनो गुन ठानै॥
देखो या जलधर की करनी, बरसत पोषै आनै।
'सूरदास' सरबस जो दीजै, कारो कृतहि न मानै॥

[६]

मधुबन, तुम कत रहत हरे?
बिरह-बिजोग स्याम सुन्दर के, ठाढ़े क्यों न जरे!
तुम हो निलज, लाज नहिं तुमको, फिर सिर पुहुप धरे॥
सखा स्यार औ बन के पखेरू, धिक्-धिक सबन्ह करे।
कौन काज ठाढ़े रहें बन में, काहे न उकठि परे॥

[७]

ऊधौ! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुंदरि कगरी, अरु कुंजन की छाहीं॥
वे सुरभी, वे बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल सब करत कोलाहल, नाचत गहि-गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदानंद निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछताहीं॥

सूर-विनय

[१]

ऐसो कब करि हौ गोपाल।
मनसा नाथ मनोरथ दाता, हौ प्रभु दीन-दयाल॥
चित्त निरंतर चरनन अनुरत, रसना चरित रसाल।
लोचन सजल प्रेम पुलकित तन, कर कंजनि दल माल॥
ऐसे रहत, लिखै छिनु छिनु जम, अपनौ भायौ जाल।
'सूर' सुजस-राजी न डरत मन, सुनि जातना कराल॥

[२]

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिर जहाज पै आवै॥
कमलनयन को छाँड़ि महातम, और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो, दुरमति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

[३]

प्रभु! मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहि करो॥
एक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार कहावत, मैलो नीर भरो।
जब मिलकै दोउ एक बरन भए, सुरसरि नाम परो॥
एक जीव, इक ब्रह्म कहावत, 'सूर' श्याम झगरो।
अबकी बेर नाथ, मोहि तारो, नहिं पन जात टरो॥

[४]

जो तू राम नाम चित धरतौ।
अब को जन्म आगलो तेरो, दोऊ जन्म सुधरतौ॥
यम को त्रास सबै मिट जातो, भक्त नाम तेरौ परतौ।
तंदुल घृत सँवारि श्याम को, सन्त परोसो करतौ॥
होतो नफा साधु की संगति, मूल गाँठ ते टरतौ।
'सूरदास' बैकुण्ठ पेंठ में कोउ, न फेंट पकरतौ॥

[५]

काया हरि के काम न आई।
भावभक्ति जहँ हरियश सुनयो, तहाँ जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई।
चरनकमल सुन्दर जहँ हरि को, क्यों हूँ न जात नवाई॥
जब लगि श्याम अङ्ग नहिं परसत, आँखें जोग रमाई।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु, विषय परम विष खाई॥

[६]

छाँड़ि मन हरि-विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग॥
कहा भयो पय-पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूखन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत, रीतो करत निखंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥

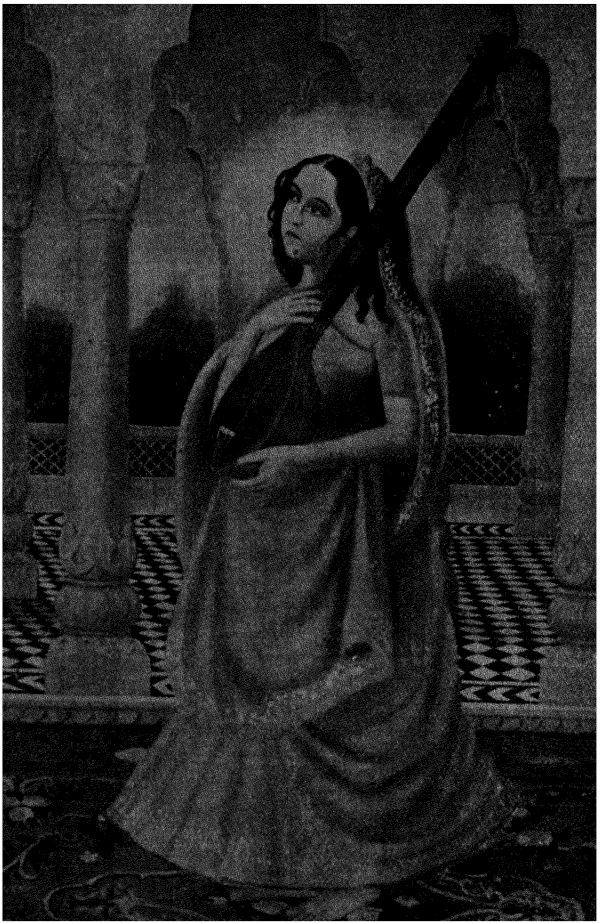

भक्तमीरा

मीरा बाई

[१]

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥
तात, मात, बन्धु, सखा, अपनो नहिं कोई।
छाँड़ि दई कुल को कानि, क्या करिहैं कोई॥
संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक-लाज खोई।
चुनरी के किये टूक, ओढ़ लीन्ह लोई॥
मोती मूँगे उतार, बन-माला पोई।
अँसुवन-जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई॥
अब तो बेलि फैल गई, आनंद फल होई।
दूध की मथनिया, बड़े प्रेम से बिलोई॥
माखन जब काढ़ि लियो, छाछ पियै कोई।
आई मैं भक्ति-काज, जगत जोहि मोही॥
दासि मीरा गिरिधर प्रभु, तारौ अब मोही।

[२]

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहिनी मूरत साँवरि सूरत, सुन्दर नैन विसाल।
मधुर अधर पै मुरली राजत उर बैजंती माल॥
छुद्र-घंटिका कटि-तट सोभित, नूपुर-सब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन-सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल॥

[३]

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी ?
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, तलफ तलफ जिय जासी ॥
तेरे खातर जोगण हूँगी, करवट लूँगी कासी ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥

[४]

करम-गति टारे नाहिं टरे ।
सतवादी हरिचन्द से राजा, नीच घर नीर भरे ।
पाँच पाण्डु अरु कुन्ती द्रोपदी, हाड़ हिमालय गरे ॥
जग्य किया बलि लेन इन्द्रासन, सो पाताल धरे ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, विष सों अमृत करे ॥

[५]

मैं हरि बिन क्यों जिऊँ, री माय ।
पिय कारन बौरी भई, जस काठहिं घुन खाय ।
औषध मूल न संचरै, मोहि लाग्यौ बौराय ॥
कमठ दादुर बसत जल महँ, जलहिं ते उपजाय ।
मीन जल के बीछुरे तन तलफि कै मरि जाय ॥
पिय ढूँढ़न बन बन गई, कहुँ मुरली धुनि पाय ।
मीरा के प्रभुलाल गिरिधर मिलि गये सुखदाय ॥

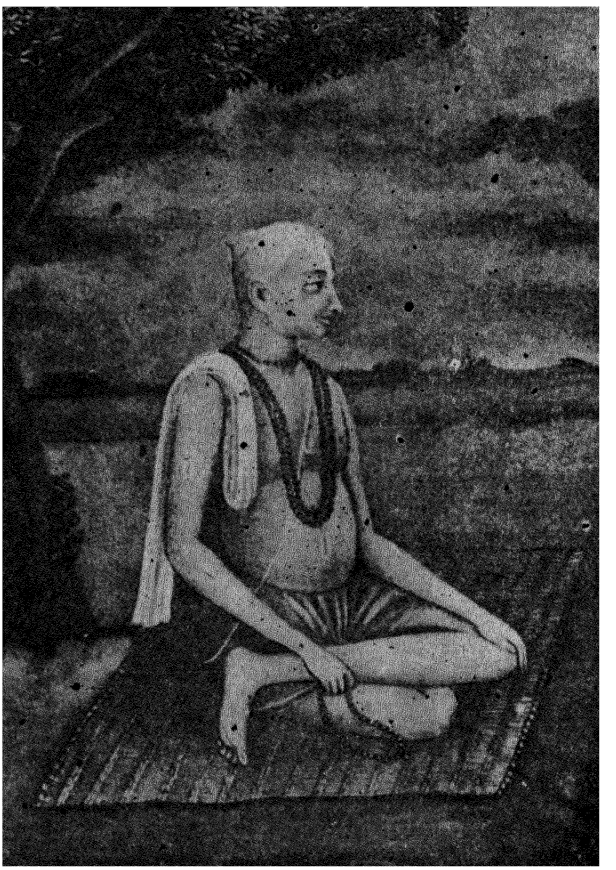

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास

नारद-मोह

हिम-गिरि-गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अतिभावा॥
निरख सैल सरि बिपिन बिभागा। भयेउ रमा-पति-पद अनुरागा॥
सुमिरित हरिहि सापगति-बाधी। सहज बिमल मनलागि समाधी॥
मुनिगति देखि सुरेस डेराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचर-केतू॥
सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लालुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥
सूख हाड़लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीन लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥१॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृङ्गा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम-कृसानु बढ़ावनि हारी॥
रंभादिक सुरनारि नबीना। सकल असम सर-कला प्रबीना॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु बिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना॥
कामकला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सके कोउ तासू। बड़ रखबार रमापति जासू॥
सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥२॥

भयेउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय-बचन काम परितोषा॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयेउ मदन तब सहित सहाई॥
मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुर-पति-सभा जाइ सब बरनी॥
सुनि सब के मन अचरज आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिर नावा॥
तब नारद गवने सिव पाहीं। जिता काम अहमिति मन माहीं॥
मार-चरित संकरहिं सुनाए। अति प्रिय जानि महेस सिखाए॥
बार बार बिनवौं मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनायहु कबहूँ। चलेउ प्रसंग दुरायहु तबहूँ॥

संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहिं सुहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि-इच्छा बलवान॥३॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥
एक बार करतल बर बीना। गावत हरिगुन गान-प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनि-नाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥
हरषि मिलेउ उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहँसि चराचर राया। बहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया॥
कामचरित नारद सब भाखे। जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥

रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं, मोह मार मद मान॥४॥

सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज-ब्रत-रत मतिधीरा। तुम्हहिं कि करै मनोभव पीरा॥

नारद कहेउ सहित अभिमाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी । उर अकुरेउ गर्ब-तरु भारी ॥
बेगि सो मैं डारिहौं उखारी । पन हमार सेवक-हितकारी ॥
मुनिकर हित मम कौतुक होई । अवसि उपाय करब मैं सोई ॥
तब नारद हरिपद सिरु नाई । चले हृदय अहमिति अधिकाई ॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरी ॥

बिरचेउ मगु महुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार ।
श्री-निवास-पुर तें अधिक, रचना बिबिध प्रकार ॥५॥

बसहिं नगर सुंदर नर-नारी । जनु बहु मनसिज-रति तनुधारी ॥
तेहि पुर बसै सीलनिधि राजा । अगनित हय-गय सेन-समाजा ॥
सत-सुरेस-सम बिभव बिलासा । रूप तेज बल नीति निवासा ॥
बिस्वमोहिनी तासु कुमारी । श्री बिमोह जिसु रूप निहारी ॥
सोइ हरि-माया सब-गुन-खानी । सोभा तासु कि जाय बखानी ॥
करै स्वयंबर सो नृपबाला । आए तहँ अगनित महिपाला ॥
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयेऊ । पुरबासिन्ह सब पूछत भयेऊ ॥
सुनि सब चरित भूप-गृह आए । करि पूजा नृप मुनि बैठाए ॥

आनि देखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि ।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहिके हृदय बिचारि ॥६॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी । बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने । हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने ॥
जो एहि बरै अमर सोइ होई । समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥
सेवहिं सकल चराचर ताही । बरै सीलनिधि-कन्या जाही ॥

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाखे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहिं बरै कुमारी॥
जप-तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला॥

एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुँअरि, तब मेलै जयमाल॥७॥

हरिसन माँगौं सुन्दरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरे हित हरि-सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥
बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिए हरषाने॥
अति आरत कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहिं पावौं ओही॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया-बल देखि बिसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला॥

जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥८॥

कुपथ माँग रुज-ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयेऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयेऊ॥
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥

मुनि-हित-कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिर नावा॥

रहे तहाँ दुइ रुद्रगन, ते जानहि सब भेउ।
बिप्रवेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥९॥

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप-अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेसगन दोऊ। बिप्रवेष गति लखै न कोऊ।
करहि कूटि नारदहि सुनाई। नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुअँरि छबि देखी। इनहि बरिहि हरि जानि बिसेखी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराये। हँसहिं संभुगनि अति सकुचाये॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न परइ बुद्धि भ्रम-सानी॥
काहु न लखा सो चरित्र बिसेखा। सो सरूप नृप-कन्या देखा॥
मरकट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥

सखी-संग लेइ कुँअरि तब, चलि जनु राजमराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१०॥

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकेउ भूली॥
पुनिपुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर-गन मुसुकाहीं॥
धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिन लेइगे लच्छिनिवासा। नृपसमाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोहमति नाँठी। मनि गिर गई छूट जनु गाँठी॥
तब हर-गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन देखि मुनि बारि निहारी॥
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥

होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ ॥११॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माहीं। सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देइहउँ साप कि मरिहउँ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहि पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥
बोले मधुर बचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। मायाबस न रहा मन बोधा॥
परसंपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायेहु। सुरन्ह प्रेरि बिष-पान करायेहु॥

असुर सुरा बिष संकरहि, आपु रमा मनि चारु॥
स्वारथसाधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट-व्यवहारु॥१२॥

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहिं करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मंद मंदहि भल करहू। बिसमय हरष न हिय कछु धरहू॥
डहँकि डहँकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहिं न काहू साधा॥
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु साप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरह तुम्ह होब दुखारी॥

साप सीस धरि हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करसि कृपानिधि लीन्हि॥१३॥

जब हरि माया दूर निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
जब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारतिहरना॥
मृषा होउ मम साप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे॥
जपहु जाइ संकर-सत-नामा। होइहि हृदय तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई॥

बहु बिधि मुनिहिं प्रबोधि प्रभु, तब भए अंतरधान।
सत्य लोक नारद चले, करत राम-गुन-गान॥१४॥

(रामचरित मानस)

सरस-सवैये

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि, मंजुबनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरबिंद सों आनन रूपमरंद अनंदित लोचन-भृङ्ग पिये।
मनमों न बस्यौ अस बालक जौ 'तुलसी' जग में फल कौन जिये॥१॥
तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनी-ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं॥२॥

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कै, पुनि लेत सोइ जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन मंदिर में बिहरैं॥३॥
गर्भ के अर्भक काटन को पटु धार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा 'धनुको दल्यौ'? हौं दलिहौं बल ताको॥
लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरो कहौ कौसिक छोटोसो ढोटो है काको॥४॥
दूलह श्रीरघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदरि मंदिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥५॥

× × × ×

कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औधहुते पहुनाई।
राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ कि नाई॥६॥

× × × ×

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
'तुलसी' जेहिके पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥७॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू?
'तुलसी' अवलंब न और कछू लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू?
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए हौं नाथ, न नाव चढ़ाइहौं जू॥८॥
रावरे दोष न पाँयन को, पग-धूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पाँय पखारिकै नाव चढ़ाइहौं आयसु होत कहा है?
'तुलसी' सुनि केवट के बरबैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥९॥

× × × ×

बनिता बनि स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी मोहिं सी है।
मग जोग न कोमल क्यों चलिहैं? सकुचात मही पद-पंकज छ्वै॥
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥१०॥
साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनि बेष कियो है॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥११॥
रानी मैं जानी अजानी महा, पबि पाहन हूँ ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है?
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कैबनवास दियोहै?१२॥

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरछी-सी भौं हैं।
तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम बधू सिय सों 'कहौ साँवरे-से, सखि रावरे को हैं?'॥१३॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाय चली॥
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥१४॥

(कवितावली)

× × × ×

पदावली

जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी, जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं?
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची?
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच बिसिषन बाँची?
गहि न जाति रसना काहू की कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबंधु कारुन्य-सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै?
'तुलसी' रामबियोग-बिषम-बिष-बिकल नारि-नर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी॥१॥

× × × ×

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥
ज्यों गज-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥२॥

× × × ×

ऐसो को उदार जग माहीं!
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम-सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥
'तुलसिदास' सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काज सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥३॥

× × × ×

सब दिन चित्रकूट नीको लागत।
बरषा ऋतु प्रवेस बिसेस गिरि देखत मन अनुरागत॥
चहुँ दिसि बन संपन्न, बिहँग मृग बोलत सोभा पावत।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत॥
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे-सृङ्गनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृङ्गनि॥

सिखर परस घन घटहिं, मिलति बगपाँति सो छबि कवि बरनी।
आदि बराह बिहारि बारिध मनो उठ्यो है दसन धरिनी॥
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ, बन-प्रतिबिंब तरंग।
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग-अंग॥
मंदाकिनिहि मिलत झरि-झरि भरि-भरि जल आछे।
'तुलसी, सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे॥४॥

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानाँ

रहीम

तैं रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचंद्र की ओर॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर॥

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥
एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलै फलै अघाय॥

ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाँहि।
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं॥
ओछो काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥
कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि को प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम॥
खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥
गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि॥
छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥
छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख॥
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह॥
जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि॥
जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिचभौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम॥
जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥
जो रहीम ओछो बढ़े, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय॥
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात॥
टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥
तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सँचहि सुजान॥
थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरिधर कहत न कोय॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ जाहिं॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंरको भाय॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥

नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत॥
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन॥
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधै मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन॥
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि॥
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि॥
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेस।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेस॥
माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम॥
मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस॥
मुकता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय॥
यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत-होत ही होय॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़ कुंज, करीर॥
रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहते, कस न भेद कहि देइ॥
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ॥
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ॥
रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जाँचबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि॥
रहिमन निज मन की बिथा, मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि॥
रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुस, चून॥
रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात॥

रहिमन राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय॥
रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥
राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावण साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपने हाथ॥
वे रहीम नर धन्य हैं, परउपकारी अंग।
बाँटन बारे को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग॥
सर सूखे पच्छी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं॥
ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय॥
सीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंच आपनी ओर को, डार दियो पुनि दूर॥

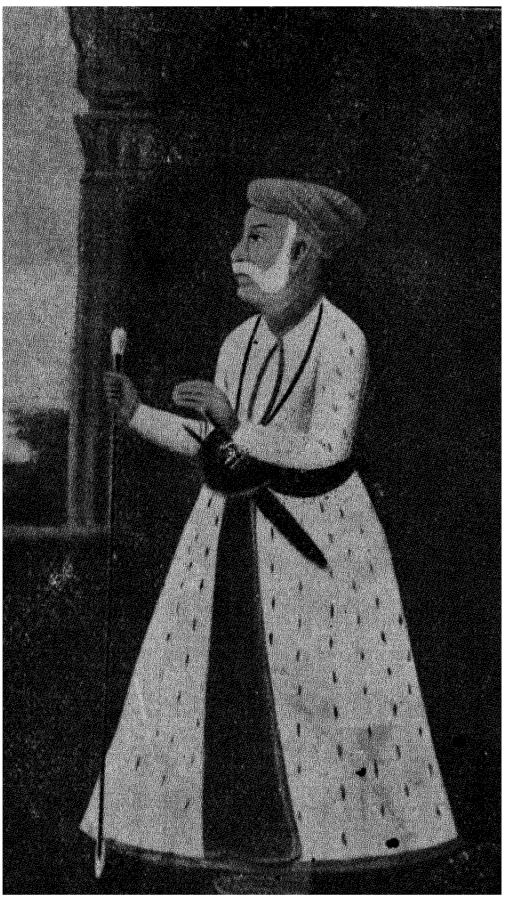

महाकविकेशव

केशवदास

रावण-अंगद-संवाद

अंगद कूद गए जहाँ, आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेश॥

प्रतीहार—

पढ़ो विरंचि! मौन वेद, जीव! सोर छंडि रे।
कुवेर! बेर कै कही न यक्ष-भीर मंडि रे।
दिनेश! जाइ दूर बैठु नारदादि संगही।
न बोलु चंद!! मंदबुद्धि, इंद्र की सभा नहीं॥
अंगद यो सुनि बानी। चित्त महा रिस आनी।
ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे॥

रावण—

कौन हो, पठये सो कोनै, ह्याँ तुम्हैं कह काम है॥

अंगद—

जाति बानर, लंक-नायक-दूत, अंगद नाम है॥

रावण—

कौन है वह, बाँधि कै हम देह पूँछि सबै दही?

अंगद—

लंक जारि, संहारि अक्ष, गयो सो बात वृथा कही?

रावण-अंगद—

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि? न जानिए।
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए॥
है कहाँ वह वीर? अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ बान-विमान बैठि सिधाइयो॥

लंक-नायक को ? विभीषण, देव-दूषण को दहै।
मोहिं जीवत होहिं क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै॥
मोहि को जग मारिहै ? दुर्बुद्धि तोरिय जानिए।
कौन बात पठाइयो, कहि बीर बेगि बखानिए ?

अंगद—

श्रीरघुनाथ को बानर केशव आयो हो एक न काहू हयो जू।
सागर को मद झारि, चिकारि, त्रिकूट को देह बिदार-छयो जू॥
सीय निहारि, सँहारि कै राक्षस, शोक अशोक-बनीहि दियो जू।
अक्षकुमारहि मारि कै, लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू॥

राम राजान के राज आए इहाँ,
धाम तेरे, महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुभकर्णादि दै,
मित्र मंत्री जिते पूँछि देखौ सबै।
राखिजै जाति को, भाँति को, वंश को,
साधिजै लोक में लोक-परलोक को।
आनि कै, पाँ परो, देसलै कोशलै,
आसुहीं ईस-सीता चलैं ओक को॥

रावण—

लोक-लोकेश त्यों शोचि ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सींव सो सो रहै।
चारि बाहैं धरे विष्णु रक्षा करे,
बात साँची यहै वेद-वाणी कहै।

ताहि भ्रूभंग ही देव-देवेश स्या,
विष्णु ब्रह्मादि है रुद्र जू संहरै।
ताहि हौं छोड़ि कै पायँ काके परौं,
आजु संसार तो पायँ मेरे परै॥

रावण-अंगद—

राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं।
कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ ?
बालि बली, छल सों; भृगुनंदन—
गर्व हरो, द्विजदीन महा।
दीन सो क्यों, छित-छत्र हत्यो,
बिन प्राणहि हैहयराज कियो।
हैहय कौन ? वहै विरच्यो, जिन
खेलत ही तुम्हैं बाँधि लियो॥

अंगद—

सिंधु तर्‌यो उनको बनरा, तुम पै धनु-रेख गई न तरी।
बाँध्योइ बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिध बाँधि कै बाट करी।
अजहूँ रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दशकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी।

रावण—

नील, सुखेन, हनू उनके नल, और सबै कपि-पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै, अपनो पदु लै पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहिं जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद सँग लै मेरो सबै दल, आजहिं क्यों न हनै बपुमारे।

जो सुत अपने बाप को, वैर न लेय प्रकास।
तासों जीवत ही मरयो, लोग कहैं तजि त्रास॥

अंगद—

इनको बिलगु न मानिए, सुनि रावण पल आधु।
पानी, पावक, पवन, प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु॥

रावण—

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनक-घातक-बात वृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं। सकल बानर-राज तुम्हैं करौं॥

अंगद—

शत्रु, सम, मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत-विधि-नूत कबहुँ न उर आनहीं।
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज-शीश तब और कहँ राखहू॥

रावण—

महामीचु-दासी सदा पाइँ धोवै।
प्रतीहार ह्वै के कृपा सूर जोवै॥
सपानाथ लीन्हें रहै छत्र जाको।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥
सका मेघमाला, शिखी पाक-कारी।
करै कोतवाली महादंड-धारी॥
पढ़ै वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके॥

अंगद—

पेट चढ़्यो, पलना, पलिका चढ़ि,
पालकि हूँ चढ़ि मोह-मढ़्यो रे।
चौक चढ़्यो, चित्रसारी चढ़्यो,
गज-बाजि चढ़्यो, गढ़-गर्व चढ़्यो रे।
व्योम-विमान चढ़्यौई रह्यौ,
कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतत नाहीं, रह्यो चढ़ि चित सों,
चाहत मूढ़ चिताहू चढ़्यो रे॥

रावण—

निकार्‌यो जो, भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़ि कै जू, कहा त्रास ताको॥
लिए बानराली कहौं बात तोसों।
सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों॥

अंगद—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ-कोठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहीं सँग रैहै॥
केशव काम को राम बिसारत, और निकाम, न कामहिं ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतकलोक अकेलोइ जैहै॥

रावण—

डरै गाय-बिप्रै, अनाथै जो भाजै।
परद्रव्य छोड़ै, परस्त्रीहि लाजै॥
परद्रोह जासों न होवै रतो को।
सु कैसे लरै वेष कीन्हें यती को॥

गेंद करयो मैं खेल को, हर-गिरि केशवदास ।
शीश चढ़ाये आपने, कमल समान सहास ॥

अंगद—

जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं ।
काटे जो कहत शीश, काटत घनेरे बाघ,
मगर के खेले कहा भट-पद पावहीं ।
जीत्यो जो सुरेश रण, शाप ऋषि-नारि ही को,
समुझहु हम द्विज नाते समुझावहीं ।
गहौ राम-पायँ सुख पाइ करो तपी ! तप,
सीताजू को देहु देव दुंदुभी बजावहीं ॥

रावण—

तपी जपी विप्रनि-छिप्र ही हरौं ।
अदेव-द्वेषी सब देव संहरौं ॥
सिया न देहौं, यह नेम जी धरौं ।
अमानुषो भूमि अबानरी करौं ॥

अंगद—

पाहन ते पतिनी करि पावन, टूक कियो हर के धनु को रे ?
छत्र-विहीन करी क्षण में क्षिति, गर्व हर्‌यो तिनके बल को रे ?
पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे, अजहू धरको रे ।
होइँ नरायणहूँ पै न ये गुण, कौन यहाँ नर बानर को रे ॥

रावण—

देहिं अंगद ! राज तो कहँ मारि बानर-राज को ।
बाँधि देहि विभीषणौ अरु फोरि सेतु-समाज को ॥

पूंछि जारहिं अच्छ-रिपु की, पाईं लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं, पार जाहिं समुद्र के॥

अंगद—

लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिंधु बाँधत शोधिकै नल क्षीर छीर बहाइयो॥
ताहि तोहिं समेत अंध उखारिहौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ विभीषण बैठिहैं, तेहिते डरौं॥
अंगद रावण को मुकुट, लै करि उड्यो सुजान।
मनो चलो यमलोक को, दशशिर को प्रस्थान॥
अंगद लै वा मुकुट को, परे राम के पाइ।
राम विभीषण के शिरसि, भूषित कियो बनाइ॥

रसखान

१—सवैया

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रजगोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्‌यो हरि छत्र पुरन्दर कारन।
जौ खग हौं तो बसेरा करौं, मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन॥
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौ निद्धि को सुख, नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सौं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिकहूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥
धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनि बाजती, पीरी कछोटी॥
वा छबि सो रसखानि बिलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए हरि, हाथ सो लै गयो माखन रोटी॥
द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सौं कियो सो न निहारो।
गौतमगेहिनी कैसे तरी; प्रह्लाद को कैसे हर्‌यो दुख भारो॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहै रविनंद बिचारो।
कौन की संक परी है जु माखन चाखन हारो है राखनहारो॥
गावैं गुनी गनिका गंधर्व औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेश, ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

कल कानन कुंडल मोरपखा उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरा मुसकान तरंग महाछबि छाजति है॥
'रसखानि' लखै तन पीत पटा सत दामिनी की कुति लाजति है।
वह बाँसुरी की धुनि कान परें कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

ग्यान वही जु रहैं रिझि वापर रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही दही सु सही जो वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहौं 'रसखानि' री भाव वही जु वही मन भायो॥

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं फनि सेंक फनी फहरावत हैं॥
'रसखानि' जेई चितवै चित दै तिनके दुख दुंद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

२-कवित्त

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोए बीच नल
कहा जीत लाए राज सिंधु आर पार को॥

जप बार बार तप संजम बयार व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लवार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित
चाह्यो न निहारो जो पै नंद के कुमार को॥
अपनो सो ढोटा हम सब ही को जानति हैं
दोऊ प्रानी सबहिं के काज नित धावहीं।
ते तौ 'रसखानि' सब दूर तें तमासो देखैं
तरनि तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा
हितू जे जे आए तेऊ लोचन दुरावहीं।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली हाय!
मेरे बनमाली को न काली ते छुड़ावहीं॥

सेनापति

ऋतु-वर्णन

[१]

बरन बरन तरु फूले उपबन बन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
गुञ्जत मधुप गान गुन गहियत है॥

आवै असा-पास पुहुपन की सुबासु, सोई
सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौ समाज, 'सेनापति' सुख-साज, आज
आवत बसंत रितुराज कहियत है॥

[२]

लाल लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्याम रंग भेंट मानौ मसि में मिलाए हैं।
तहाँ मधुकाज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपबन बन धाए हैं॥

'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
बिरही दहन काम कैला परचाए हैं॥

[३]

बृष कौं तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है॥
'सेनापति' नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका बिषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनों सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है॥

[४]

'सेनापति' तपन तपति उतपति तैसौ,
छायो उस पति, तातैं बिरह बरत है।
लुवन की लपटैं, ते चहूँ ओर लपटैं, पै
ओढ़े सलिल पटैं न चैन उपजत है॥
गगन गरद धूँधि, दसौ दिसा रहीं रूँधि,
मानौं नभ भार की भसम बरसत है।
बरनि बताइ, छिति-ब्योम की ततई, जेठ
आयौ आततई पुट-पाक सौं करत है॥

[५]

'सेनापति' उनए नए जलद सावन के,
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै॥

घन सों गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रबि गयौ खोइ कै
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि,
मेरे जान याही तैं रहत हरि सोइ कै॥

[६]

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
'सेनापति' मानौं सुभ्र फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन कार के॥

[७]

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना—
पति है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चंद, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीरसागर मगन हैं॥

[८]

सीत कौं प्रबल 'सेनापति' कोपि चढ्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सिमराइ कै।

हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै ॥
धूम नैंन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिए सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै ।
मानौं भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै ॥

[९]

सिसिर मैं ससिकौं सरूप पावै सविताऊ,
घामहू में चाँदिनी की दुति दमकति है ।
'सेनापति' होत सीतलता है सहसगुनी,
रजनी की झाँईं बासर में झमकति है ॥
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है ।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है ॥

[१०]

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरि कै ।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' पाई कछू सोचि कै सुमिरि कै ॥
सीत तैं सहस-कर सहस-चरन ह्वैके,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै ।
जौलौं कोक कोकी कौं मिलत तौलों होति राति,
कोक अधिबीच ही तैं आवत है फिरि कै ॥

महाकवि बिहारी

बिहारी

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं, स्याम हरित-दुति होइ॥
पाइ महावरु दैंन कौं, नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ॥
अंग-अंग-नग जगमगत, दीप सिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ो उज्यारौ गेह॥
पत्रा हीं तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै, आनन-ओप-उजास॥
केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंपकु कितकु अनूपु।
गात-रूपु लखि जातु दुरि, जातरूप कौ रूपु॥
बेसरि-मोती-दुति-झलक, परी ओठ पर आइ।
चूनौ होइ न चतुर तिय, क्यों पट-पोंछ्यौ जाइ॥
तन भूषन, अंजन दृगनु, पगनु महावर-रंग।
नहिं सोभा कौं साजियतु, कहिबैं ही कौं अंग॥
नित प्रति एकत हीं रहत, बैस-बरन-मन एक।
चहियत जुगलकिसोर लखि, लोचन-जुगल अनेक॥
तूँ रहि, हौं हीं सखि, लखौं, चढ़ि न अटा, बलि, बाल।
सबहिनु बिनु हीं ससि-उदै, दीजतु अरघ अकाल॥
भूषन-भारु सँभारिहै, क्यों इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा हीं कैं भार॥

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत॥

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ - डीठि - पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष-रँग होति॥

छाले परिबे कैं डरनु, सकै न हाथ छुवाइ।
झझकत हियैं गुलाब कैं, झँवा झँवैयत पाइ॥

जदपि लौंग ललितौ तऊ, तूँ न पहिरि इक आँक।
सदा साँक बढ़ियै रहै, रहै चढ़ी सी नाक॥

सोहत ओढ़ैं पीतु पटु, स्याम सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर, आतपु पर्‌यौ प्रभात॥

नेह न, नैनन कौं कछु, उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ॥

जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि।
आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखैं लागति नाँहि॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ॥

गोपिन कैं अँसुवन भरी, सदा असोस, अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, बगर बगर कैं बार॥

नाचि अचानक हीं उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानति हौ नंदित करी, यह दिसि नन्द किसोर॥

जद्यपि सुंदर, सुघर, पुनि, सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरियै जितैं सनेह॥

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

अजौं तर्‌यौना हीं रह्यौ, श्रुति सेवत इक रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु कैं संग॥

सीतलाऽरु सुबास की, घटै न महिमा-मूरु।
पीनस वारैं जौ तज्यौ, सोरा जानि कपूरु॥

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद - बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ॥

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब मैं, अपत कटीली डार॥

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि बिहंग बिचारि।
बाज, पराऐं पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि॥

को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ो यौं भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल॥

दिन दस आदरु पाइ कै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु॥

मरतु प्यास पिंजरा-पर्‌यौ, सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु, बाइसु बलि की बेर॥

इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कैं मूल।
हैहैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारनु वे फूल॥

चल्यौ जाइ, ह्याँ को करै, हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुम्हार॥

नहिं पावसु, ऋतुराज यह, तजि, तरवर, चित-भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै, क्यों नव दल, फल, फूल॥
कर लै, सूँघि, सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध, गुलाब को, गवई गाहकु कौनु॥
गोधन, तूँ हरष्यौ हियैं, घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर, परत पसुनु के पाइ॥
दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥
थोरैं ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ, कान्ह, मनौ भए, आज काल्हि के दानि॥
नाह गरजि नाहर-गरज, बोलु सुनायौ टेरि।
फँसी फौज में बंदि-बिच, हँसी सबनु तनु हेरि।
दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रबि-चंदु॥
तौ लगु या मन-सदन मैं, हरि आवैं किहिं बाट।
विकट जटे जौ लगु निपट, खुटैं न कपट-कपाट॥
बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु॥
जौ चाहत, चटक न घटै, मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइयै, नेह-चीकनौं चित्त॥
यह बरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि॥

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ, खरौ पूस-दिन-मानु॥
बिषम बृषादित की तृषा, जिये मतीरनु सोधि।
अमित, अपार, अगाध-जलु, मारौ मूढ़ पयोधि॥
पावस-घन-अँधियार महि, रह्यौ भेदु नहिं आनु।
रात द्यौस जान्यौ परतु, लखि चकई चकवानु॥
कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ।
जगत तपोवन सौ कियौ, दीरघ - दाघ - निदाघ॥
यौं दल काढ़े बलक तैं, तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कै परैं, ज्यौं हरि गाइ, गुवाल॥
घर घर तुरकिन, हिंदुनी, देतिं असीस सराहि।
पतिनु राखि चादर चुरी, तैं राखी, जयसाहि॥

भूषण

शिवाजी की प्रशंसा के छंद

[१]

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह-सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कूल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को॥

'भूषन' अखंड नवखंड-महि-मंडल मैं,
तम पर दावा रबि-किरन-समाज को॥
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं,
जहाँ पादसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

[२]

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है॥

ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा-सो तरनि धूरि-धारा में लगत, जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

[३]

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं कंद-मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं॥
भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं तेऽब बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥

[४]

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध नदीस को।
'भूषन' भनत सुरसरिता को हंस हेरै,
बिधि हेरै हंस को, चकोर रजनीस को॥
साहि-तनै सिवराज, करनी करी है तैं जु,
होत है अचंभो देव कोटियों तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज,
गिरि को गिरीस हैरैं, गिरजा गिरीस को॥

[५]

राखी हिन्दुआनी, हिन्दुआन को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखा राजन की,
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं॥

'भूषन' सुकबि जीति हद्द मरहट्ठन को,
देस-देस कीरति बखानी सब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबिकै दिबाल राखी दुनी मैं॥

[६]

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँह हू के,
सब बादसाहन के गढ़ कोट हरते।
'भूषन' कहैं यों अवरंग सौं वजीर जीति—
लीवे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिन हैं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तौ घने काज करते॥

[७]

बिना चतुरंग संग बानरन लैकै बाँधि,
बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी बिराट में बड़ाई है॥
'भूषन' भनत है गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥

[८]

लोमस की ऐसी आयु होय कौन्हू उपाय,
तापर कवच जो करनबारो धरिए।
ताहू पर हूजिये सहसबाहु, ताहू पर,
सहसगुनो साहस जो भीमहू ते करिये॥
'भूषन' कहैं यों अवरंगजू सों उमराव,
नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरिए।
चलै न कछू इलाज, भेजियत बे ही काज,
ऐसो होय साज, तौ सिवा सों जाय लरिए॥

[९]

दान समै द्विज तेखि मरेहू कुबेरहू की,
संपति लुटायबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिवसाहि के बदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥
'भूषन' जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥

[१०]

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार,
दिल्ली दहसति चित चाह खरकति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरत फिरंगिन की नारी फरकति है॥
थरथर काँपत कुतुब-सहि गोलकुंडा,
हहरि हबस-भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

पद्माकर

गंगा-गौरव

[१]

विधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरि-पद-पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीश शीश मण्डल के,
मुण्डन की माल तत्काल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुण्य-पथ,
जन्हु जप-जोग-फल-फैल की फहर है।
क्षेम की छहर गंगा ! गवरी लहर,
कलि-काल को कहर जम-जाल को जहर है॥

[२]

बाको यश कितहूँ न जाग्यो परतच्छ पैई,
याकौ धाम-धामन में फैलि रह्यो जस है।
कहे 'पद्माकर' सु दान वह माँगे देत,
ये तो बिन माँगे सब देत सरबस है॥
आछो अभिराम कहै पूरन सकल काम,
गंगाजू को नाम काम-तरु ते सरस है।
बाको सुन्यो एक देवलोक में दरस होत,
याको तो दिखात तिहूँ लोक में दरस है॥

[३]

कूरम पै कोल, कोलहूँ पै शेस कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पदमाकर' त्यों फनन फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थित रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर शंभु सुरनायक हैं,
शंभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
शंभु जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की॥

[४]

हौं तो पंचभूत, तजिवे को तक्यो तोहि पर,
तैं तो कर्‌यो मोहि भलो भूतन को पति है।
कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे में,
कीन्हे तन ग्यारह, कहौ, सो कौनि गति है॥
मेरे भाग यही लिखी, भगीरथी गंगे, तुम्हें,
कहियो कछुक, तो कितेक मेरी मति है।
एक अब सूल आयो मेटिबे को तेरे कूल,
तोहि तौ त्रिशूल देत बार न लगति है॥

[५]

कलि के कलंकी कूर कुटिल कुराही केते,
तरिगे तुरंत तबै लीन्हीं रेणु राह जब।
कहै 'पदमाकर' प्रयाग बिनु पावै सिद्धि,
मानत न कोऊ यम-दूतन की दाह दब॥

कागद करम करतूति के उठाइ धरे,
पचि पचि पेंच में परे हैं प्रेत-नाह अब।
बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के,
गंगा की गरद कोन्हें गरद गुनाह सब॥

[६]

गंगाजू, तिहारे तीर आछो भाँति 'पदमाकर',
देखी एक पातकी की अद्भुत गति है।
आयकै गोबिन्द बाहि धारिकै गरुड़ जू पै,
आपनेई लोक जाइबे की कीन्ही मति है॥
जौ लौं चलिवे में भयो गाफिल गोबिंद तौ लौं,
चोरि चतुरानन चलाई हंसगति है।
जौ लौं चतुरानन चितैवे चारों ओर तौ लौं,
वृष पै चढ़ाइ लै गयोई वृषपति है॥

[७]

अधम अजान एक चढ़ि कै बिमान भाष्यो,
पूछत हौं गंगा तोहि परि परि पाँयहौं।
कहै 'पदमाकर' कृपा करि बतावै साँचो,
देखे अति अद्भुत रावरे सुभाइहौं॥
तेरे गुण-गानहू की महिमा महान मैया,
कान कान गाइ के जहान मध्य छाइहौं।
एक मुख गाये ताके पञ्चमुख पाये अब,
पञ्चमुख गाइहौं, तो केते मुख पाइहौं॥

[८]

करम को मूल तन तन मूल जीव जग,
जीवन को मूल अति आनन्द ही धरिबो।
कहै 'पदमाकर' सो आनँद को मूल राज,
राजमूल केवल प्रजा को मौन-भरिबो॥
प्रजामूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
मेघन को मूल एक यज्ञ अनुसरिबो।
यज्ञन को मूल धन धनमूल धर्म अरु,
धर्ममूल गंगा-जल-विन्दु पान करिबो॥

[९]

गंगा के चरित्र लखि भाष्यो यमराज यह,
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै 'पदमाकर' नरक सब बंद कर,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै॥
देखु यह देव नदी कीन्हें सब देव,
यातें दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान दै।
फारि डारु फरद, न रखु रोजनामा कहूँ,
खाता खत जान दै, बही को बहि जान दै॥

[१०]

जैसों तै न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब हौं हूँ नेकहू न तोसों डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो तो,
उमंड करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं॥
चलो चलु, चलो चलु विचलु न बीच ही ते,
कीच बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक-अपार ! तोहिं,
गंग की कछार में पछार छार करिहौं॥

दीनदयालगिरि

अन्योक्तियाँ

रसाल

एहो धीर रसाल ! अति सोहत हौ सिरमौर।
साखा बरनै रावरी द्विजवर ठौरै ठौर॥
द्विजवर ठौरै ठौर रावरो ही फल चाहैं।
निकसे जो तव पात सुमन सो सुधी सराहैं॥
बरनै 'दीनदयाल' धन्य वा धात्री के हो।
जातें प्रगटे आय आप उपकारी एहो॥१॥

कदली

रम्भा झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये अरु ह्वैहैं इहि खेत॥
अरु ह्वैहैं इहि खेत मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुम पै अति दीने॥
बरनै 'दीनदयाल' हमैं लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रम्भा॥२॥

पलास

दिन द्वै पाय बसन्त-मद फूल्यो कहा पलास।
ग्रीखम भीखम सीस पै नहिं लाली की आस॥
नहिं लाली की आस फूल सब तेरे झरिहैं।
पीछे तोहि न दत्ती ! अली कोऊ आदर करिहैं॥
बरनै 'दीनदयाल' रहो नय कोमल किन ह्वै।
ये नख नाहर रूप रहैंगे तेरे दिन द्वै॥३॥

शाल्मली

किन किन की मति नहिं छली सालमली करि अंध।
गीधे गिध आमिख डली जानत अली सुगंध॥
जानत अली सुगंध भली लाली सुक भूले।
जानि अँगार चकोर ओर चहुँतें अनुकूले॥
बरनै 'दीनदयाल' लखै गति को छिन छिन की।
यह छल रूप ललाम छली नहिं मति किन किन की॥४॥

बंस

तोमैं बंस ! न सार कछु बकिबोई अभिमान।
तातें मलै न तोहि को बिरचे आप समान॥
बिरचे आप समान न तो हिय सून निहारत।
तेरे पाप हुतास तासु तैं तिनहूँ जारत॥
बरनै 'दीनदयाल' दोख तिनको न कहौं मैं।
गंधसार का करै सार है बंस न तोमैं॥५॥

करीर

धार्‌यो दल न करीर ! तुम बहु रितुराजन पाय।
यहै त्याग दृढ़ देखिकै प्रिय कीनों जदुराय॥
प्रिय कीनों जदुराय रमैं तब कुञ्जनि माहीं।
और सबै तरुराज ताहि दिसि देखत नाहीं॥
बरनै 'दीनदयाल' ऊँच नहिं नीच बिचार्‌यो।
जो जग धर्‌यो बिराग ताहि हरि हित सों धार्‌यो॥६॥

कपास

जग में गुनमय करि तुम्हैं बरनें सकल महान।
कहा भयो जो नहिं कियो चपल एक अलि मान॥
चपल एक अलि मान कियो नहिं एक नसायो।
हे कपास सहि खेद धन्य परछेद दुरायो॥
बरनै 'दीनदयाल' स्याम याको गनि ठग में।
मधुप मन्द किमि जान तुम्हैं बुध जानैं जग में॥७॥

गुलाब

सुनिए मीत गुलाब! अलि क्यों मन रहिए रोकि।
धरते धीरज रसिक चित कुसुमित कली बिलोकि॥
कुसुमित कली बिलोकि चहूँ दिस भरत भाँवरी।
ताहि न कंटक बेधि करो मति बिकल ताँवरी॥
बरनै 'दीनदयाल' पालि हित अपनो गुनिए।
रस पराग जुत राग सुगंधहिं दै जस सुनिए॥८॥

सामान्य विहंग

सूखे तरु सेवत कहा बिहँग देवद्रुम सेव।
सजैं सुकादिक धीर जहँ सुन्यो न ताकौ भेव॥
सुन्यो न ताकौ भेव फूल फल सौरभ जामें।
सदा रहै रस लसो बसो कुसुमाकर तामें॥
बरनै 'दीनदयाल' लाल तूतो अति चूको।
सुखद कल्पतरु त्यागि दुखद सेवै द्रुम सूको॥९॥

आध्यात्मिक भाव

देखो पथी उघारि कै नीके नैन विवेक।
अचरजमय यह बाग में राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक मूल ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहाँ, अचाह एक, इक बहु फल चाखा॥
बरनै 'दीनदयाल' खाय सो निबल बिसेखो।
जो न खाय सो पीन रहै अति अद्भुत देखो॥१०॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कालिन्दी की कमनीयता

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥

मनु आतप वारन तीर कों, सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत॥१॥

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहूँ सवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमगे प्रिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा॥

कै करि कै कर बहु पोय कों, टेरत निज ढिंग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥२॥

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज तियगन बदन-कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आईं॥

कै सात्विक अरु अनुराग दोउ, ब्रजमण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि, करि सतधा निज जल धरत॥३॥

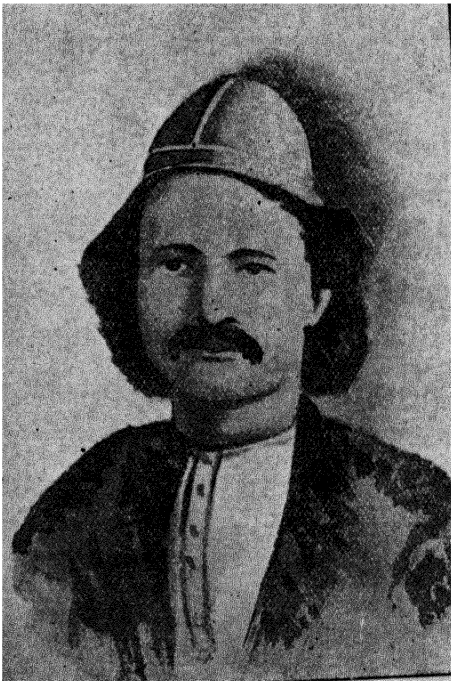

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
जल मैं मिलिकै नभ-अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ावत लखि सुन्दर सो सोभा ॥

सो को कवि जो छबि कहि सकै, ताछन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत, छबि इक सी नभ तीर की ॥४॥

परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द्र जल बसत सुहायो ।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो ॥

क रास रमन मैं हरि मुकुट, आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि-मूरति बसति, ता-प्रतिबिंब लखात है ॥५॥

कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै ।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥

कै बाल गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥६॥

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर-तरङ्ग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥

कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ॥७॥

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥

कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥

कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये।
रत्न रासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये॥

मनु मुक्त माँग सोभित भरी, श्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर मैं, ब्रज निवास लखि हिय हरसि ॥९॥

(चन्द्रावली से)

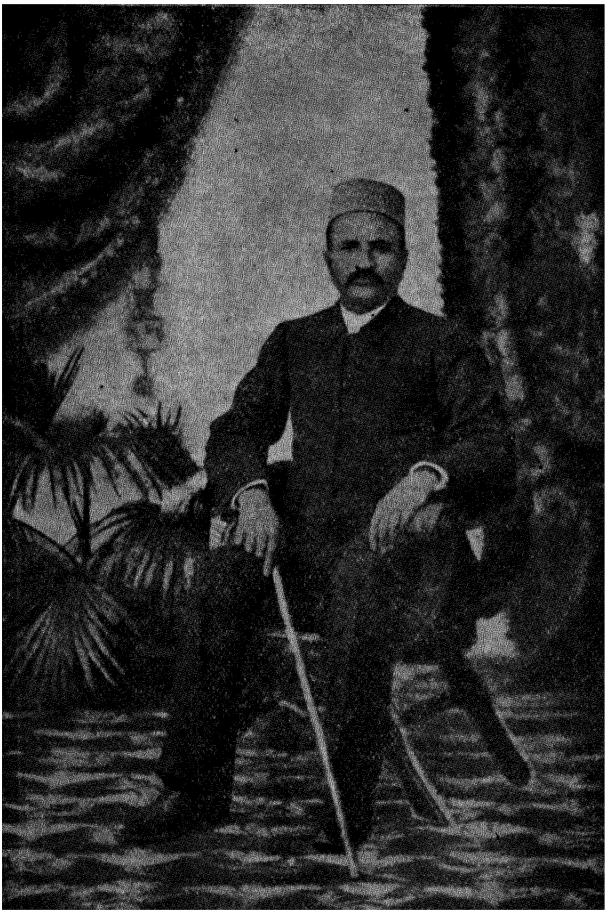

पं० श्रीधर पाठक

कविवर श्रीधर पाठक

काश्मीर-वर्णन

धनि धनि श्री कश्मीर-धरनि मन-हरनि सुहावनि।
धनि काश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनि मनभावनि॥
धन्य आर्य्य—कुल—धर्म—पर्म—प्राचीन-पीठ-थल।
धन्य सारदा-सवनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य-फल॥
धन्य पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छबि।
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कबि॥

❀ ❀ ❀ ❀

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छबि छिन-छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छबि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥
विहरति विविध-विलास-भरी जोबन के मद सनि।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि ठनि॥
मधुर मंजु छबि पुंज छटा छिरकति बन कुञ्जन।
चितवति, रिझवति, हँसति, डसति, मुसिक्याति, हरति मन॥

❀ ❀ ❀ ❀

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भाँतन।
सर, सरिता, गरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन॥
पूरन करिबे काज काम अपने मन की।
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की॥

❀ ❀ ❀ ❀

चहुँदिसि हिमगिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवन सोई चन्द्रहार जनु॥
फल फूलन छवि छटा छई, जो वन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उदर सों निधि रतनन की॥
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छबि।
छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फबि॥
मानहु मनिमय मौलि-माल-आकृति अलबेली।
बाँधी बिधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली॥

❀ ❀ ❀ ❀

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर।
को सोभा को भौन रूप को कौन समुन्दर?
काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी।
याकौं सुरपुर की अथवा सुरपुर कौं याकी?
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

❀ ❀ ❀ ❀

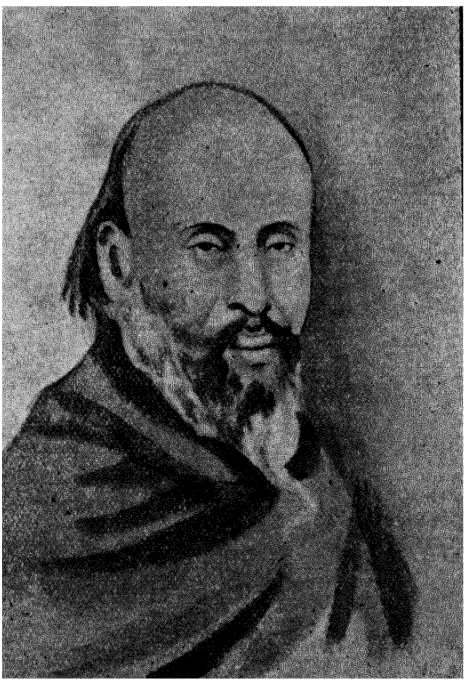

श्री० अयोध्यासिंह उपाध्याय

अयोध्यासिंह उपाध्याय ('हरिऔध')

गोचारण से प्रत्यागमन

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

विपिन-बीच बिहंगम वृन्द का।
कल निनाद विवर्धित था हुआ॥
ध्वनिमयी-विविधा बिहगावली।
उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी॥

अधिक और हुई नभ-लालिमा।
दश-दिशा अनुरंजित हो गई॥
सकल-पादम-पुंज हरीतिमा।
अरुणिमा विनिमज्जित-सी हुई॥

झलकने पुलिनों पर भी लगी।
गगन के तल की यह लालिमा॥
सरि-सरोवर के जल में पड़ी।
अरुणता अति ही रमणीय थी॥

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी।
किरण पादप-शीश-बिहारिणी॥

तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला।
गगन-मण्डल मध्य शनैः शनैः॥
ध्वनि-मयी करके गिरि-कन्दरा।
कलित-कानन-केलि-निकुंज की॥
बज उठी मुरली इस काल ही।
तरुणिजा-तट-राजित कुंज में॥
कणित मंजु-विषाण हुए कई।
रणित शृङ्ग हुए बहु साथ ही॥
फिर समाहित-प्रान्तर भाग में।
सुन पड़ा स्वर धावित धेनु का॥
निमिष में वन की बहु वीथिका।
विविध-धेनु-विभूषित हो गईं॥
धवल-धूसर-वत्स-समूह भी।
विलसता जिनके दल-साथ था॥
जब हुए समवेत शनैः शनैः।
सकल गोप स-धेनु स-मण्डली॥
तब चले व्रज-भूषण को लिए।
अति अलंकृत-गोकुल ग्राम को॥
गगन-मण्डल में रज छा गई।
दश-दिशा बहु-शब्दमयी हुईं॥
विशद गोकुल के प्रति-गेह में।
बह चला वर-स्रोत विनोद का॥

सुन पड़ा स्वर ज्यों कल-वेणु का।
सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा॥
हृदय-यंत्र निनादित हो गया।
तुरत ही अनियंत्रित भाव से॥
कुकुभ-शोभित गो-रज-बीच से।
निकलते व्रज-वल्लभ यों लसे॥
कदन ज्यों कर वर्धित-कालिमा।
विलसता नभ में नलिनीश है॥
अतसि-पुष्प अलंकृतकारिणी।
शरद - नील - सरोरुह - रञ्जिनी॥
नवल-सुन्दर-श्याम-शरीर की।
सजल-नीरद-सी कल-कान्ति थी॥
सरस-राग-समूह सहेलिका।
सहचरी मन-मोहन-मंत्र की॥
रसिकता - जननी कल - नादिनी।
मुरलिका कर में मधु-वर्षिणी॥
मुरलिका कर-पंकज में लसी।
जब अचानक थी बजती कभी॥
तब सुधा-रस-मंजु-प्रवाह में।
जन-समागम था अवगाहता॥
इधर था इस भाँति समा बँधा।
उधर व्योम हुआ कुछ और ही॥

अब न था उसमें रवि राजता।
किरण भी न सुशोभित थी कहीं॥
अरुणिमा जगतीतल-रंजिनी।
वहन थी करती अब कालिमा॥

मलिन थी नव-राग-मयी-दिशा।
अवनि थी तमसावृत हो रही॥
तिमिर की यह भूतल-व्यापिनी।
तरलधार विकास-विरोधनी॥

जन-समूह-विलोचन के लिए।
बन गयी प्रति-मूर्ति विराम की॥
द्युतिमती उतनी अब थी नहीं।
नयन की अति दिव्य कनीनिका॥

अब नहीं थी वह अवलोकती।
मधुमयी छवि श्रीघनश्याम की॥
यह अभावुकता तन-पुञ्ज की।
सह सकी नहिं तारक-मण्डली॥

वह प्रकाश-विवर्धन के लिए।
निकलने नभ मंडल में लगी॥
तदपि दर्शक-लोचन लालसा।
फलवती न हुई तिलमात्र भी॥

नयन की लख के यह दीनता।
सकुचने सरसीरुह भी लगे॥

खग-समूह न था अब बोलता।
विटप थे बहु नीरव हो गये॥
मधुर मञ्जुल मत्त अलाप के।
अब न यंत्र बने तरु-वृन्द थे॥
विहग औ विटपी-कुल-मौनता।
प्रकट थी करती इस मर्म को॥
श्रवण को वह नीरव थे बने।
करुण अंतिम-वादन वेणु का॥

('प्रिय-प्रवास' से संकलित)

आँख का आँसू

आँख का आँसू ढलकता देखकर।
जी तड़प करके हमारा रह गया॥
या गया मोती किसी का है बिखर!
या हुआ पैदा रतन कोई नया॥१॥
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ीं।
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ॥
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ीं।
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ॥२॥
था जिगर पर जो फफोला था पड़ा।
फूट करके वह अचानक बह गया॥
हाय! था अरमान जो इतना बड़ा।
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया॥३॥

पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ।
यों किसी का है निरालापन गया॥
दर्द से मेरे कलेजे का लहू।
देखता हूँ आज पानी बन गया॥४॥

प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी।
वह नहीं इसको सका कोई पिला॥
प्यास जिससे होगई है सौगुनी।
वाह! क्या अच्छा इसे पानी मिला॥५॥

ठीक करलो जाँच लो धोखा न हो।
वह समझते हैं मकर करना इसे॥
आँख के आँसू निकल करके कहो।
चाहते हो प्यार जतलाना किसे॥६॥

आँख के आँसू समझ लो बात यह।
आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े॥
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह,
जबकि दिल में से निकल तुम यों पड़े॥७॥

हो गया कैसा निराला यह सितम।
भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया॥
यों किसी का है नहीं खाते भरम।
आँसुओ! तुमने कहो यह क्या किया॥८॥

झाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ।
हैं फँसे इस रोग में छोटे बड़े॥

है इसी दिल से तो वह पैदा हुआ।
क्यों न आँसू का असर दिल पर पड़े ॥९॥

रंग क्यों इतना निराला कर लिया।
है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह ॥
आँसुओं! जब छोड़ तुमने दिल दिया।
किस लिए करते हो फिर दिल में जगह ॥१०॥

बात अपनी ही सुनाते हैं सभी,
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥
जब किसी का दिल पसीजेगा कभी।
आँख से आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं ॥११॥

बूँद गिरते देखकर यों मत कहो।
आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो।
किरकिरी इस आँख में है पड़ गई ॥१२॥

है यहाँ कोई नहीं धूआँ किये।
लग गई मिरचें न सरदी है हुई ॥
इस तरह आँसू भर आये किसलिए।
आँख में ठंडी हवा है लग गई ॥१३॥

देख करके और का होते भला।
आँख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥
दूर से आँसू उमड़ कर तो चला।
पर उसे कैसे भला ठंडा करे ॥१४॥

पाप करते हैं न डरते हैं कभी।
चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥

सोचकर अपनी बुरी करनी सभी।
यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥१५॥

है हमारे औगुनों की भी न हद।
हाय! गरदन भी उधर फिरती नहीं॥

देख करके दूसरों का दुख दरद।
आँख से दो बूँद भी गिरतीं नहीं ॥१६॥

किस तरह का वह कलेजा है बना।
जो किसी के रंज से हिलता नहीं॥

आँख से आँसू छना तो क्या छना।
दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥१७॥

वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी।
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं॥

फूट जाय आँख वह जिसमें कभी।
प्रेम का आँसू उमड़ आता नहीं ॥१८॥

पाप में होता है सारा दिन बसर।
सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं॥

आज भी रोते नहीं हम फूटकर।
आँसुओं का तार लग जाता नहीं ॥१९॥

बू बनावट की तनिक जिसमें न हो।
चाह की छींटें नहीं जिन पर पड़ीं॥

प्रेम के उन आँसुओं से हे प्रभो!
यह हमारी आँख तो भीगी नहीं ॥२०॥

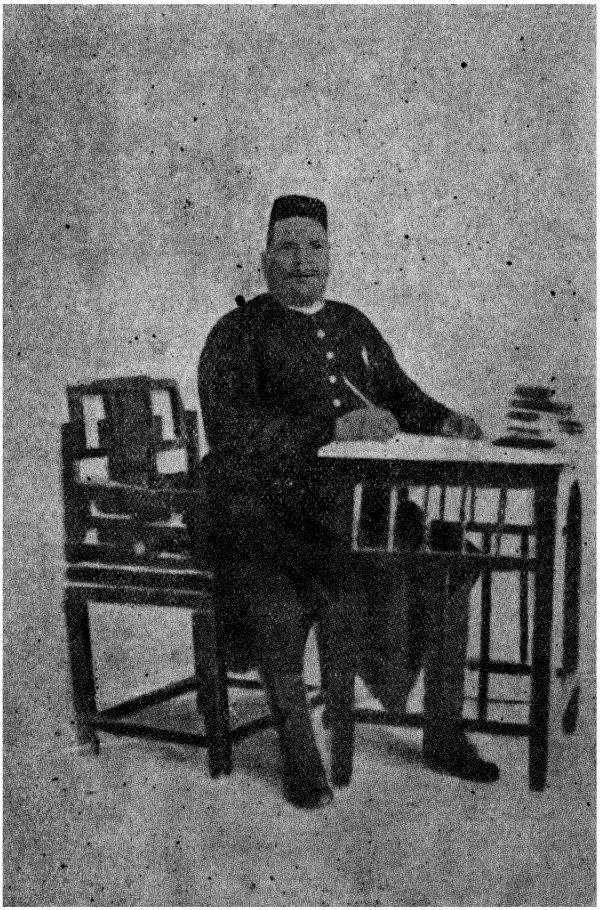

बा० जगन्नाथप्रसाद 'रत्नाकर'

बाबू जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर'

उद्धव के प्रति गोपियों के वचन

[१]

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा को गहौ,
कहौ ना कहानी जौ बिबिध कहि आये हौ।
कहै 'रतनाकर' न बूझि हैं बुझाये हम,
करत उपाय वृथा भारी भरमाये हौ॥
सरल स्वभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैं,
पर उर घाय करि लौन सौ लगाये हौ।
रावरी सुधाई मैं भरी है कुटिलाई कूटि,
बात की मिठाई मैं लुनाई लाइ ल्याये हौ॥

[२]

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमान नाहिं,
तुम भ्रम-भौंर मैं भले ही बहिबौ करौ।
कहै 'रतनाकर' गुविन्द ध्यान धारैं हम,
तुम मन मानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं,
ऊधौ ! तुम देखिहू अदेख रहिबौ करौ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म,
हम न कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ॥

[३]

कर बिनु कैसैं गाय दुहिहै हमारी वह,
पद बिनु कैसें नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै 'रतनाकर' बदन-बिनु कैसें चाखि,
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइहै॥
देखि सुनि कैसे दृग स्रवनि बिना ही हाय,
भोरे ब्रजबासिन की विपति बराइहै।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइहै॥

[४]

जग सपनौ सो सब परत दिखाई तुम्हैं,
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहैं 'रतनाकर' सुनै को बात सोवत की,
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि,
त्यौंही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानै कहा जोहि जकौ,
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥

[५]

सुघर सलोने स्याम सुन्दर सुजान कान्ह,
करुनानिधान के बसीठ बनि आये हौ।

प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सँदेसौ नाहिं,
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाये हौ॥
ज्ञान-गुन-गौरव-गुमान भरे फूले फिरौ,
बंचक के काज पै न रंचक बराये हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ,
मेरे जान ऊधौ क्रूर-कूबरी पठाये हौ॥

[६]

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै,
वैसिये पुरन्दर-कृपा जौ लहि जायगी।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौ बतावत जो,
कछु इहि नीति की प्रतीति गहि जायगी॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यो बलि,
तौ तौ भाँति काहूँ यह बात रहि जायगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग,
सारी ब्रह्मज्ञानता तिहारी बहि जायगी॥

[७]

नन्द जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछु,
बात बृषभान भौनहूँ की जनि कीजियौ।
कहै 'रतनाकर' कहतीं सब हाहा खाइ,
ह्याँ के परपंचनि सौ रंच न पसीजियौ॥

आँसू भरियेहैं औ उदास मुख ह्वैहै हाय,
ब्रज दुख त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस,
स्याम सौं हमारी राम-राम कह दीजियौ॥

('उद्धव शतक' से)

गजेन्द्र मोक्ष

[१]

रमत रमा के संग आनँद उमंग भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पै।
कहै 'रतनाकर' बदन-दुति औरै भई,
बूँदैं छई छलकि दृगनि नेह नाधे पै॥
धाये उठि, बार न उबारन मैं लाई रञ्च,
चंचलाहू चकित रही ह्वै वेग साधे पै।
आवत बितुंड की पुकार मग आधै मिली,
लौटत मिल्यौ तौ पच्छिराज मग आधे पै॥

[२]

संग के पुराने गज दिग्गज डराने सबै,
ताने कान कुञ्जर सुरेस कौ चिबार्‌यो हैं।
कहै 'रतनाकर' त्यों करि कमला के काँपि,
चाँपि चख पानिप कहूँ कौ कहूँ पार्‌यो है॥

संकयुत दौरि पौरि खेलत गजानन हूँ,
गोद गिरजा की दुरि मौन मुख धार्‌यो है।
एते माँहि आतुर उमाहि हरि आइ धाइ,
सुंड गहि बूड़त बितुंडहि उबार्‌यो है॥

[३]

सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ।
कहै 'रतनाकर' बिहारी करुना की कोर,
बचन उचारि जो हरैया दुख-साज कौ॥
अंबु पूरी दृगनि बिलंब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीन्ह छत दंतनि दराज कौ।
पीत पट लै लै कै अँगौछत सरीर कर—
कंजनि सौं पोंछत भुसुण्ड गजराज कौ॥

[४]

परत पुकार कान कानि करुना की आनि,
सहित उदेग बेग-बिकल बिकाने से।
कहै 'रतनाकर' रमाहूँ कौं बिहाइ धाइ,
औचक ही आइ भरे भाइ सकुचाने से॥
आतुर उबारि पुचकारि धरनी पै धारि,
अमित अपार स्रम भभरि भुलाने से।
फेरत भुसुण्ड पै कँपत कर पुण्डरीक,
बिकल बितुण्ड-सुण्ड हेरत हिराने से॥

[५]

संगबारे महत मतंगनि के संग सबै,
निज निज प्रान लै पराने पुसकर सौं।
कहै 'रतनाकर' बिचारौ बल हारौ तब,
टेरि हरि पार्‌यो कल कंज गहि सर सौं॥
पहुँच न पायौ पुनि बारि लौं न जौलौं वह,
तौलौं लियौ लपकि उबारि हरबर सौं।
एक सौं ललायो चक्र एक सौं चलायो गह्यो,
एक सौं भुसुंड पुण्डरीक एक कर सौं॥

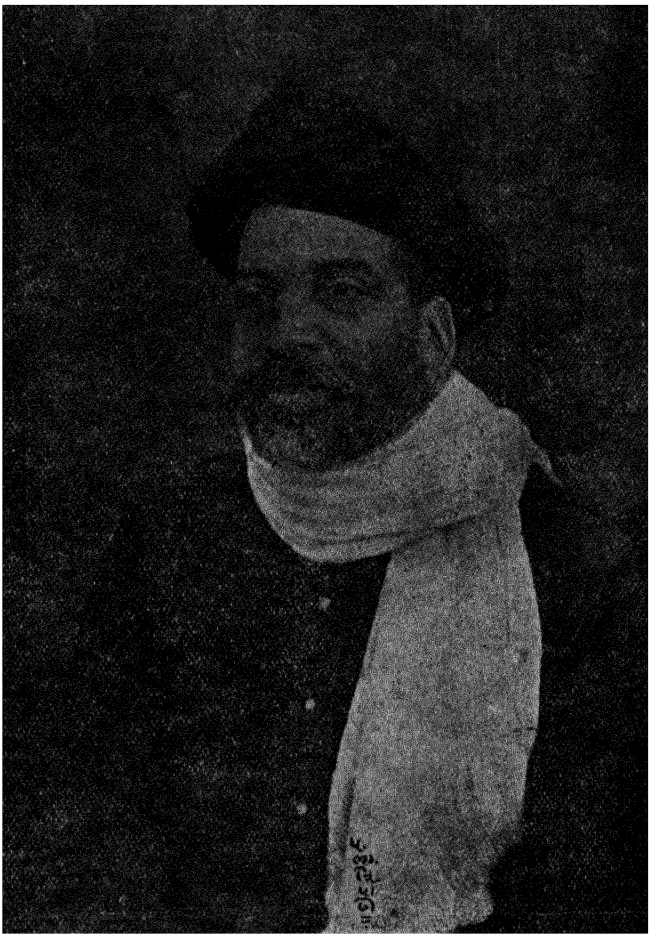

बा० मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

कैकयी का अनुताप

तदनन्तर बैठी सभा उटज के आगे,
नीले वितान के तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरों के थे वे,
परिणामोत्सुक उन भयातुरों के थे वे।
उत्फुल्ल करौंदी-कुंज-वायु रह - रहकर,
करती थी सबको पुलक-पूर्ण मह - महकर।
वह चन्द्रलोक था, कहाँ चाँदनी वैसी,
प्रभु बोले गिरा गँभीर नीरनिधि जैसी।
"हे भरत भद्र, अब कहो अभीप्सित अपना;"
सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना।
"हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी
पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प - तड़पकर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?
हा! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।

मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा !"
प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा;
रोदन जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा।
"उसके आशय की थाह मिलेगी किसको,
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको ?"

❀ ❀ ❀ ❀

"यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को,"
चौंके सब सुनकर अटल कैकयी-स्वर को।
सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृत यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा,
वह सिंही अब थी हहा ! गोमुखी गंगा—
"हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिन्ह विशेष शपथ है,
पर, अबलाजन के लिए कौन-सा पथ है !
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।

ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ।
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ।"

थी सनक्षत्र शशि-निशा ओस टपकाती,
रोती थी नीरव सभा हृदय थपकाती।
उल्का-सी रानी दिशा दीप्त करती थी;
सब में भय, विस्मय और खेद भरती थी।

"क्या कर सकती थी, मरी मन्थरा दासी,
मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।
जल पंजर-गत अब अरे अधीर, अभागे,
वे ज्वलित भाव थे स्वयं तुझी में जागे।

पर था केवल क्या ज्वलित भाव ही मन में?
क्या शेष बचा था कुछ न और इस जन में?
कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य-मात्र, क्या तेरा?
पर आज अन्य-सा हुआ वत्स भी मेरा।

थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे!

कहते आते थे यही अभी नर-देही,
'माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही।'

अब कहें सभी यह हाय ! विरुद्ध विधाता,—
'हैं पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।'
बस मैंने इसका बाह्य मात्र ही देखा ;
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा !
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल में भी थी एक अभागी रानी।'
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा—
'धिक्कार ! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'—"
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"
पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई—
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

❀ ❀ ❀ ❀

"हा ! लाल ! उसे भी आज गमाया मैंने,
विकराल कुयश ही यहाँ कमाया मैंने।
निज स्वर्ग उसी पर वार दिया था मैंने,
हर तुम तक से अधिकार लिया था मैंने।
पर वही आज यह दीन हुआ रोता है,
शंकित सबसे धृत हरिण-तुल्य होता है।
श्री खण्ड आज अंगार-चण्ड है मेरा,
फिर इससे बढ़कर कौन दण्ड है मेरा।

❀ ❀ ❀ ❀

पटके मैंने पद-पाणि मोह के नद में,
जन क्या क्या करते नहीं स्वप्न में, मद में !
हा ! दण्ड कौन, क्या उसे डरूँगी अब भी !
मेरा विचार कुछ दयापूर्ण हो तब भी।

हा दया ! हन्त वह घृणा ! अहह वह करुणा !
वैतरणी-सी हैं आज जाह्नवी वरुणा !!
सह सकती हूँ चिरनरक, सुनें सुविचारी,
पर मुझे स्वर्ग की दया दण्ड से भारी।

लेकर अपना यह कुलिश-कठोर कलेजा,
मैंने इसके ही लिए तुम्हे वन भेजा।
घर चलो इसी के लिए, न रूठो अब यों,
कुछ और कहूँ तो उसे सुनेंगे सब क्यों ?

मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगने प्रिय रहो न मुझसे न्यारे।
मैं इसे न जानूँ, किन्तु जानते हो तुम,
अपने से पहले इसे मानते हो तुम।

तुम भ्राताओं का प्रेम परस्पर जैसा,
यदि वह सब पर यों प्रकट हुआ है वैसा,
तो पाप-दोष भी पुण्य-दोष है मेरा,
मैं रहूँ पंकिला, पद्म-कोष है मेरा।

आगत ज्ञानीजन उच्च भाल ले-लेकर,
समझावें तुमको अतुल युक्तियाँ देकर।
मेरे तो एक अधीर हृदय है बेटा,
उसने फिर तुमको आज भुजा भर भेटा।

देवों की ही चिरकाल नहीं चलती है
दैत्यों की भी दुर्वृत्ति, यहाँ फलती है।'
हँस पड़े देव केकयी-कथन यह सुनकर
रो दिये क्षुब्ध दुर्दैव दैत्य सिर धुनकर।

"छल किया भाग्य ने मुझे अयश देने का,
बल दिया उसी ने भूल मान लेने का।
अब कटे सभी वे पाश नाश के प्रेरे,
मैं वही केकयी, वही राम तुम मेरे।

होने पर बहुधा अर्धरात्रि अन्धेरी,
जीजी आकर करतीं पुकार थीं मेरी—
'लो कुहकिनि, अपना कुहक, राम यह जागा,
निज मझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।

भ्रम हुआ भरत पर मुझे व्यर्थ संशय का,
प्रतिहिंसा ने ले लिया स्थान तब भय का।
तुम पर भी ऐसी भ्रान्ति भरत से पाती
तो उसे मनाने भी न यहाँ मैं आती।

जीजी ही आतीं, किन्तु कौन मानेगा ?
जो अन्तर्यामी, वही इसे जानेगा।"
"हे अम्ब, तुम्हारा राम जानता है सब,
इस कारण वह कुछ खेद मानता है कब !"
"क्या स्वाभिमान रखती न कैकयी रानी ?
बतला दे कोई मुझे उच्चकुल-मानी।
सहती कोई अपमान तुम्हारी अम्बा,
पर हाय ! आज वह हुई निपट नालम्बा।
मैं सहज मानिनी रही, वही क्षत्राणी,
इस कारण सीखी नहीं दैन्य यह वाणी।
पर महा दीन हो गया आज मन मेरा,
भावज्ञ सहे जो तुम्हीं भावधन मेरा।
समुचित ही मुझको विश्व-घृणा ने घेरा,
समझाता कौन सशान्ति मुझे भ्रम मेरा ?
यों ही तुम वन को गये, देव सुरपुर को,
मैं बैठी ही रह गई लिये इस उर को।
बुझ गई पिता की चिता भरत-भुजधारी,
पितुभूमि आज भी तप्त तथापि तुम्हारी।
भय और शोक सब दूर जुड़ाओ उसका,
चलकर सुचरित, फिर हृदय उड़ाओ उसका।
हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सम्हालो,
मैं पाल सकी न स्वधर्म उसे तुम पालो।

स्वामी को जीतेजी न दे सकी सुख मैं,
मरकर तो उनको दिखा सकूँ यह मुख मैं।
मर मिटना भी है एक हमारी क्रीड़ा,
पर भरत-वाक्य है, सहूँ विश्व की व्रीड़ा।
जीवन-नाटक का अन्त कठिन है मेरा,
प्रस्ताव मात्र में जहाँ अधैर्य अँधेरा।
अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता,
करती है तुमसे विनय आज यह माता।"

('साकेत' से)

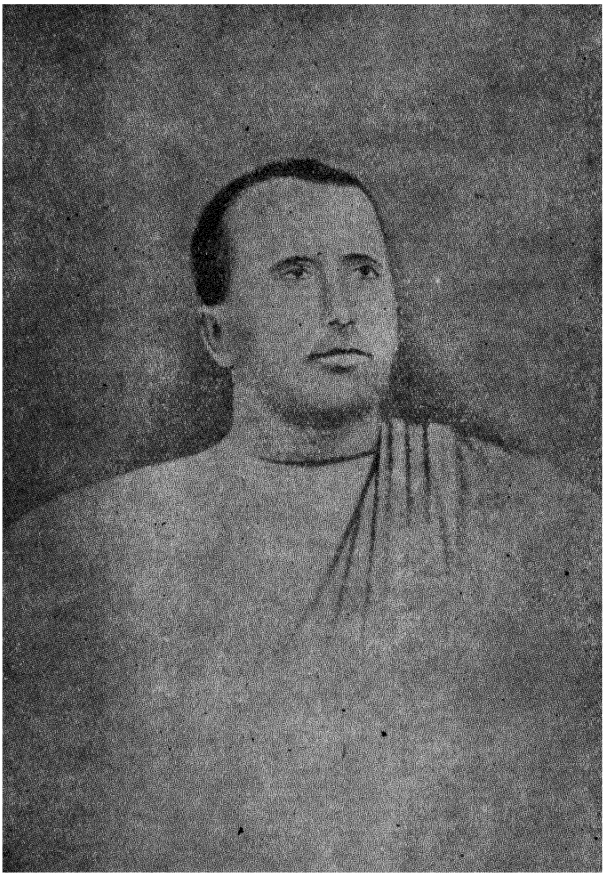

बाबू जयशंकरप्रसाद 'प्रसाद'

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

सारनाथ के प्रति

[१]

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुञ्ज !
जगत नश्वरता के लघु त्रास, लता, पादप, सुमनों के पुञ्ज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि सन्धि, गूँजता था जिससे संसार।

[२]

तुम्हारे कुञ्जों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद।
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?

[३]

छोड़कर पार्थिव भोगविभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार !
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव-सुलभ, दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार।

[४]

मुक्ति-जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुखभार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत।
देवकर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार—
तोड़ सकते हो तुम भवबन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

[५]

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्व-मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वरमंद्र।
मिला था यह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रविचंद्र।

[६]

तुम्हारा वह अभिनंदन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारम्बार।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगंत, विश्ववाणी का बने विहार।

× × × ×

जागरण गीत

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर-पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली,
आँखों में भरे विहाग री।

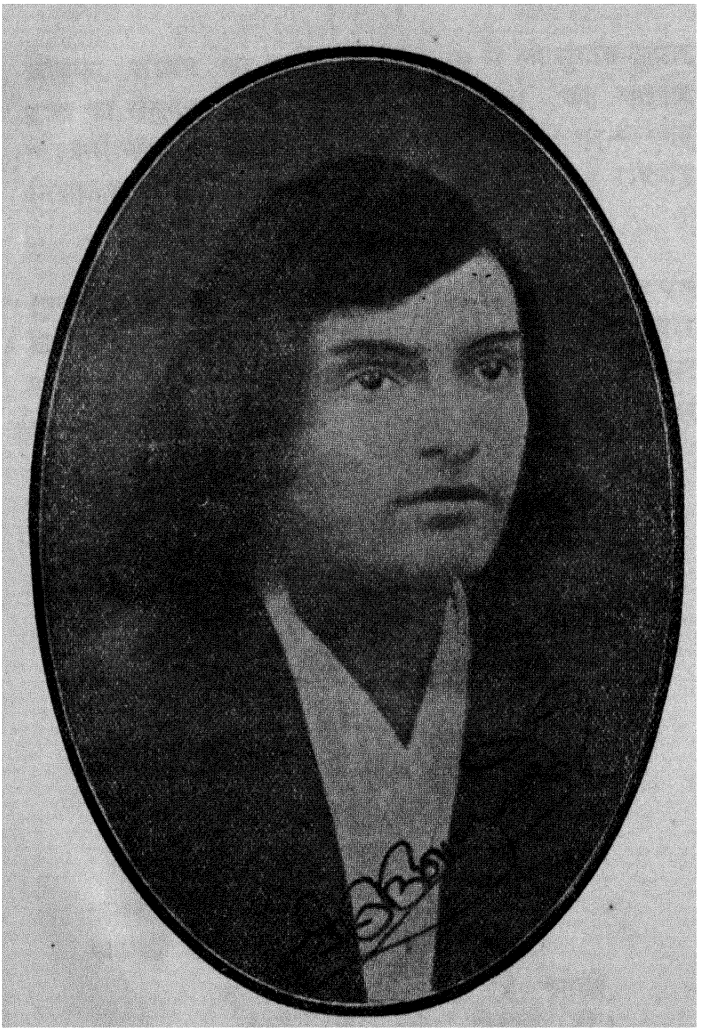

श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत

पं० सुमित्रानन्दन पंत

छाया

कौन, कौन तुम परिहत-बसना
म्लान-मना, भू-पतिता-सी,
❀ ❀ ❀
नियति-वञ्चिता, आश्रय-रहिता,
जर्जरिता पद-दलिता-सी,
❀ ❀ ❀
कहो, कौन हो दमयन्ती-सी,
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई !
पीले-पत्रों की शय्या पर,
तुम विरक्ति-सी, मूर्च्छा-सी,
विजन-विपिन में कौन पड़ी हो
विरह-मलिन, दुख-विधुरा-सी ?
❀ ❀ ❀
तुम पथ-श्रान्ता द्रुपद-सुता-सी
कौन छिपी हो अलि ! अज्ञात,
तुहिन-अश्रुओं से निज गिनती,
चौदह दुखद वर्ष दिन रात ?
❀ ❀ ❀

सखि ! भिखारिणी-सी तुम पथ पर
फैलाकर अपना अञ्चल,
सूखे-पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रति पल ?

❀ ❀ ❀

ऐ अवाक निर्जन की भारति !
कम्पित-अधरों से अनजान
मर्म मधुर किस सुर में गाती
तुम अरण्य के चिर आख्यान ?
ऐ अस्पृश्य, अदृश्य, अप्सरसि !
यह छाया-तन, छाया-लोक,
मुझको भी दे दे मायाविनि !
उर की आँखों का आलोक !
ज्योतिर्मय शत-नयन खोल नित,
पुलकित-पलक पसार अपार,
श्रान्त यात्रियों का स्वागत क्या
करती हो तुम बारम्बार ?
कभी लोभ-सी लम्बी होकर,
कभी तृप्ति-सी हो फिर पीन,

त्या संसृति की अचिर-भूति तुम
सजनि-नापती हो स्थिति-हीन ?
श्रमित, तपित अवलोक पथिक को
रहती या यों दीन मलीन ?
ऐ विटपी की व्याकुल-प्रेयसि !
विश्व-वेदना में तल्लीन !
दिनकर-कुल में दिव्य-जन्म पा,
बढ़कर नित तरुवर के सङ्ग,
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढक कर अपने कोमल-अङ्ग;
सदुपदेश-सुमनों से तरु के
गूँथ हृदय का सुरभित हार,
पर-सेवा-रत रहती हो तुम
हरती नित पथ-श्रान्ति अपार।
हे सखि ! इस पावन-अञ्चल से
मुझको भी निज मुख ढँक कर,
अपनी विस्मृत सुखद-गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर !

('पल्लव' से संकलित)

मौन निमन्त्रण

स्तब्ध-ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न-अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन!

सघन-मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इङ्गित करता तब मौन!

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के-से मृदु-उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन!

तुङ्ग-जल-शिखरों को जब बाल
सिन्ध में मथकर फेनाकार,

बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने मुझे बुलाता कौन!

स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग-कुल की कल कण्ठ-हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;
न जाने, अलस-पलक-दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल-तम में जब एकाकर
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु-झींगुर-कुल की झनकार
कँपा देती तन्द्रा के तार;
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!

कनक छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुञ्जार;
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन!

बिछा कार्यों का गुरुतर-भार
दिवस को दे सुवर्ण-अवसान,
शून्य-शय्या में, अमित-अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल-प्राण;
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन!

न जाने कौन आये द्युतिमान!
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख-दुख के सहचर मौन!
नहीं कह सकती तुम हो कौन!

('पल्लव' से)

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

क्या गाऊँ

क्या गाऊँ ?—माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग-रागिनियाँ
गाती हैं किन्नरियाँ कितनी परियाँ,
कितनी पंचदशी कामिनियाँ,
वहाँ एक यह ले कर वीणा दीन,
तन्त्री क्षीण,—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन
रुद्ध-कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ !—क्या गाऊँ ?

छाया है मन्दिर में तेरे यह कितना अनुराग !
चढ़ते चरणों पर कितने फूल
मृदु-दल सरल-पराग,
गन्ध-मोद-मद पीकर मन्द समीर
शिथिल चरण जल कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए बजते उसके अधीर नूपुर-मंजीर,
कहाँ एक निर्गन्ध-कुसुम उपहार !
नहीं कहीं जिसके पराग-संचार—सुरभि-परिवार ॥
कैसे भला चढ़ाऊँ ?
माँ ! क्या गाऊँ ?

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय शृङ्ग, और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं कान्त-कामिनी कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति।
तुम सुरापान घन-अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

तुम दिनकर के खर-किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान॥
तुम योग और मैं सिद्धि।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घन विटप, और मैं सुख-शीतल-तल शाखा॥
तुम प्राण और मैं काया।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया।

तुम प्रेममयी के कंठ-हार, मैं वेणी काल-नागिनी।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु।
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं इन अधरों की वेणु।

तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा।
तुम शरत-काल के बाल इंदु,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय-समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति- प्रेम -जंजीर॥
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल-गौरव-रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति।

तुम आशा के मधुमास, और मैं पिक, कल-कूजन तान।
तुम मदन पंचशर-हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका-रचना॥

तुम रणताण्डव-उन्माद नृत्य, मैं मुखर-मधुर-नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद वेद ओङ्कार सार, मैं कवि-शृंङ्गार-शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति।
तुम कुंद-इन्दु-अरविन्द शुभ्र,
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

(१)

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसन्त

आ रही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर वेश में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान
मिलने आये हैं आदि अंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

गलबाहें हों, या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

हल्दीघाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचंड,
राणा, ताना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

'भूषण' अथवा कवि 'चंद' नहीं,
बिजली भर दे वह छंद नहीं,
है कलम बँधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हंत !
वीरों का कैसा हो वसंत ?

('त्रिधारा' से)

---

(२)

इसका रोना

तुम कहते हो मुझको इसका रोना नहीं सुहाता है।
मैं कहती हूँ इस रोने से अनुपम सुख छा जाता है॥
सच कहती हूँ इस रोने की छवि को जरा निहारोगे।
बड़ी बड़ी आँसू की बूँदों पर मुक्तावलि वारोगे॥
ये नन्हें से ओंठ और यह लम्बी-सी सिसकी देखो।
यह छोटा-सा गला और यह गहरी सी हिचकी देखो॥
कैसी करुणा-जनक दृष्टि है! हृदय उमड़ कर आया है!
छिपे हुए आत्मीय भाव को यह उभार कर लाया है॥
हँसी बाहरी चहल-पहल को ही बहुधा दरसाती है।
पर रोने में अन्तरतम तक की हलचल मच जाती है॥
जिससे सोई हुई आत्मा जगती है अकुलाती है।
छूटे हुए किसी साथी को अपने पास बुलाती है॥
मैं सुनती हूँ कोई मेरा मुझको अहा! बुलाता है।
जिसकी करुणा-पूर्ण चीख से मेरा केवल नाता है॥
मैं हूँ उसकी प्रकृत संगिनी उसकी जन्म-प्रदाता हूँ।
वह मेरी प्यारी बिटिया है मैं ही उसकी माता हूँ॥
तुमको सुन कर चिढ़ आती है मुझको होता है अभिमान।
जैसे भक्तों की पुकार सुन गर्वित होते हैं भगवान॥

(३)

मेरा नया बचपन

बार बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।
गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी॥
चिन्ता रहित खेलना खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छन्द।
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनन्द॥
ऊँच नीच का ज्ञान नहीं था छुआछूत किसने जानी?
बनी हुई थी अहा! झोपड़ी और चीथड़ों में रानी॥
किये दूध के कुल्ले मैंने चूस अँगूठा सुधा पिया।
किलकारी कल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥
मैं रोई, माँ काम छोड़कर आई, मुझको उठा लिया।
झाड़ पोंछ कर चूम चूम गीले गालों को सुखा दिया॥
दादा ने चन्दा दिखलाया नेत्र-नीर द्रुत दमक उठे।
धुली हुई मुसकान देखकर सबके चहरे चमक उठे॥
वह सुख का साम्राज्य छोड़कर, मैं मतवाली बड़ी हुई।
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥
माना मैंने युवाकाल का जीवन खूब निराला है।
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनेवाला है॥
किन्तु यहाँ झंझट है भारी युद्धक्षेत्र संसार बना।
चिन्ता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥
आजा बचपन! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शान्ति।
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली वह अपनी प्राकृत विश्रान्ति॥

वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निष्पाप।
क्या फिर आकर मिटा सकेगा तू मेरे मन का सन्ताप ?
मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन-वन-सी फूल उठी यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥
'माँ ओ' कहकर बुला रही थी मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी॥
पुलक रहे थे अङ्ग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा विजयगर्व था झलक रहा॥
मैंने पूछा "यह क्या लाई" बोल उठी वह "माँ काओ"।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से मैंने कहा—"तुम्हीं खाओ"॥
पाया मैंने बचपन फिर से बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझ में नवजीवन आया॥
मैं भी उसके साथ खेलती खाती हूँ, तुतलाती हूँ।
मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥

—

श्रीमती महादेवी वर्मा

वे दिन

नव मेघों को रोता था
जब चातक का बालक मन,
इन आँखों में करुणा के
घिर घिर आते थे सावन!

किरणों को देख चुराते
चित्रित पंखों की माया,
पलकें आकुल होती थीं
तितली पर करने छाया।

जब अपनी निश्वासों से
तारे पिघलाती रातें,
गिन गिन धरता था यह मन
उनके आँसू की पाँतें।

जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों में लाली,
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन-प्याली।

घिर कर अविरल मेघों से
जब नभमण्डल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से
मेरा मानस भर आता।

गर्जन के द्रुत तालों पर
चपला का बेसुध नर्तन;
मेरे मनबालशिखी में
संगीत मधुर जाता बन।

किस भाँति कहूँ कैसे थे
वे जग से परिचय के दिन!
मिश्री-सा घुल जाता था
मन छूते ही आँसू-कन।

अपनेपन की छाया तब
देखी न मुकुरमानस ने;
उसमें प्रतिबिम्बित सबके
सुख-दुख लगते थे अपने।

तब सीमाहीनों से था
मेरी लघुता का परिचय;
होता रहता था प्रति पल
स्मित का आँसू का विनिमय।

परिवर्तन-पथ में दोनों
शिशु से करते थे क्रीड़ा;
मन माँग रहा था विस्मय
जग माँग रहा था पीड़ा!

यह दोनों दो ओरें थीं
संसृति की चित्रपटी की;
उस बिन मेरा दुख सूना
मुझ बिन वह सुषमा फीकी।

किसने अनजाने आकर
वह लिया चुरा भोलापन?
उस विस्मृति के सपने से
चौंकाया छूकर जीवन।

जाती नवजीवन बरसा
जो करुण घटा कण कण में,
निस्पन्द पड़ी सोती वह
अब मन के लघु बन्धन में!

स्मित बनकर नाच रहा है
अपना लघु सुख अधरों पर;
अभिनय करता पलकों में
अपना दुख आँसू बनकर।

अपनो लघु निश्वासों में
अपनी साधों का कम्पन;
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पन्दन!

मेरा 'अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरिचित;'
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित!

स्मित ले प्रभात आता नित
दीपक दे संध्या जाती;
दिन ढलता सोना बरसा
निशि मोती दे मुसकाती।

अस्फुट मर्मर में अपनी
गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्त पथ में नित-
संगीत बिछाते निर्झर।

यह साँसें गिनते गिनते
नभ की पलकें झप जातीं;
मेरे विरक्ति अञ्चल में
सौरभ समीर भर जातीं।

मुख जोह रहे हैं मेरा
पथ में कब से चिर सहचर।
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकीपन पर?

अपनी कण कण में बिखरीं
निधियाँ न कभी पहिचानी;
मेरा लघु अपनापन है
लघुता की अकथ कहानी।

मैं दिन को ढूँढ़ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में;
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक-प्याली में!

('रश्मि' से)

अलि से

इन आँखों ने देखी न राह कहीं,
इन्हें धो गया नेह का नीर नहीं ;
करती मिट जाने की साध कभी,
इन प्राणों को मूक अधीर नहीं ;
अलि छोड़ी न जीवन की तरणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं !
कभी देखा नहीं वह देश जहाँ,
पिय से कम मादक पीर नहीं !
जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं ;
जो हुआ जल दीपकमय उससे,
कभी पूछो निबाह की रीति नहीं ;
मतवाले चकोर से सीखी कभी,
उस प्रेम के राज्य की नीति नहीं ;
तू अकिञ्चन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं !
पथ में नित स्वर्ण-पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नहीं ;
पलकों से दलों में घुला मकरन्द—
पिलाती कभी अनखाती नहीं।

किरणों में गुँथी मुक्तावलियाँ,
पहनाती रही सकुचाती नहीं;
अब भूल गुलाब में पंकज की,
अलि कैसे तुझे सुधि आती नहीं!
करते करुणा-घन छाँह वहाँ,
झुलसाता निदाघ-सा दाह नहीं;
मिलती शुचि आँसुओं की सरिता,
मृगवारि का सिन्धु अथाह नहीं;
हँसता अनुराग का इन्दु सदा,
छलना की कुहू का निबाह नहीं;
फिरता अलि भूल कहाँ भटका,
यह प्रेम के देश की राह नहीं!

❀ ❀ ❀ ❀

पपीहे के प्रति

जिसको अनुराग-सा दान दिया,
उससे कण माँग लजाता नहीं;
अपनापन भूल समाधि लगा,
यह पी का विहाग भुलाता नहीं;
नभ देख पयोधर श्याम घिरा,
मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं?
वह कौन-सा पी है पपीहा तेरा,
जिसे बाँध हृदय में बसाता नहीं!

उसको अपना करुणा से भरा,
उर-सागर क्यों दिखलाता नहीं ?
संयोग वियोग की घाटियों में,
नवनेह में बाँध झुलाता नहीं ;
संताप के संचित आँसुओं से,
नहलाके उसे तू घुलाता नहीं ;
अपने तम श्यामल पाहुन को,
पुतली की निशा में सुलाता नहीं।
कभी देख पतङ्ग को जो दुख से
निज, दीप-शिखा को रुलाता नहीं ;
मिल ले उस मीन से जो जल की,
निठुराई विलाप में गाता नहीं ;
कुछ सीख चकोर से जो चुगता
अङ्गार, किसी को सुनाता नहीं
अब सीख ले मौन का मन्त्र नया,
यह पी पी घनों को सुहाता नहीं।

परिशिष्ट

१

कवि-परिचय

चन्द

(संवत १२२५-१२४९ वि०)

ये हिन्दी के प्रथम कवि माने जाते हैं, और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य। चन्दबरदाई पृथ्वीराज के समकालीन बतलाए जाते हैं। युद्ध में आखेट में, सभा में, यात्रा में ये सदा महाराज के साथ रहते थे, और जहाँ जो बातें होती थीं, सब में सम्मिलित रहते थे।

'पृथ्वीराज रासो' ढाई हज़ार पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रंथ है, परन्तु अपने वर्त्तमानरूप में यह किसी एक काल की अथवा किसी एक कवि की कृति नहीं जान पड़ता। इसमें प्राचीन काल से लेकर प्रायः आधुनिक काल तक की हिन्दी में बने हुए छन्द मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ में चेपक बहुत हैं। 'रासो' में दिये हुए सवतों का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बिलकुल मेल न खाने तथा चंगेज़, तैमूर आदि कुछ पीछे के नाम आने से अनेक विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' के पृथ्वीराज के समकालीन किसी कवि की रचना होने में पूरा संदेह किया है। इसी प्रकार 'चंद' के पृथ्वीराज के समकालीन होने की बात भी विवादात्मक है।

'पृथ्वीराज रासो' समस्त वीर गाथा युग की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। रामचरितमानस और पद्मावत की भाँति यद्यपि इसमें भावों की गहनता और कल्पनाओं की प्रचुरता नहीं मिलती, तथापि इस ग्रंथ में वीर-भावों की बड़ी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। इसकी भाषा कहीं-कहीं तो आधुनिक साँचे में ढलीसी दिखाई पड़ती है और कहीं-कहीं अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ-साथ शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं। भाषा की प्राचीनता के कारण अब यह ग्रंथ साधारण जनता के लिये दुरूह हो गया है, अन्यथा राष्ट्रोत्थान के इस युग में 'पृथ्वीराज रासो' की उपयोगिता बहुत अधिक हो सकती थी।

विद्यापति ठाकुर

विद्यापति ठाकुर का जन्म बिहार प्रान्त के दरभंगा ज़िले में हुआ था। आपके जन्म संवत् का अभीतक कोई पता नहीं लग सका है। विद्यापति राजा शिवसिंह के मित्र एवं सभासद थे, और राजा शिवसिंह ने सं० १४५९ में राज्य-सिंहासन प्राप्त किया था; इससे केवल इतना अनुमान किया जा सकता है कि विद्यापति का जन्म सं० १४३५ के आसपास हुआ होगा।

विद्यापति को पंडितों के कुल में जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। विद्यापति स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उनके लिखे हुए संस्कृत के अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं; किन्तु उनकी कीर्त्ति का कारण उनकी वह कविता है जो उन्होंने अपने प्रान्त की भाषा में की है।

आपकी कविता में शृंगार-रस की प्रधानता है। भाषा अत्यन्त मधुर है। अपनी कोमल-कान्त पदावली के कारण विद्यापति संस्कृत-कवि जयदेव के अवतार माने जाते हैं।

आपकी कविता का बिहार और बंगाल में वैसा ही प्रचार है जैसा अपने प्रांतों में तुलसी और सूर का। बंगाली तो बहुत दिनों तक विद्यापति को बंगाली कवि मानते थे। डाक्टर ग्रियर्सन आदि के प्रयत्न से अब इस भ्रम का निराकरण हो गया है। आपके गीतों के कई संस्करण निकले जिनमें लहरिया सरायवाला संस्करण अच्छा गिना जाता है।

'विद्यापति के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये देखिये—नरेन्द्रनाथ दास-कृत 'विद्यापति काव्यालोक', प्रो० जनार्दन मिश्र कृत 'विद्यापति', एवं डाक्टर उमेश मिश्र 'विद्यापति ठाकुर'।

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी अवध के जायस क़सबे के रहने वाले थे। ये अधिक पढ़े-लिखे न थे। बाल्यावस्था में ही अनाथ हो जाने के कारण इनने साधु-सन्तों की शरण ली। पंडितों का भी इनने सत्संग किया। फल यह हुआ कि इन्हें सांसारिक बातों का अच्छा ज्ञान हो गया। वेद, पुराण, क़ुरान आदि की अनेक बातें भी इन्हें साधु-संगति के कारण ही

मालूम हुई। प्रसिद्ध सूफ़ी फ़क़ीर शेख़ मोहदी के ये शिष्य हुए। उन्हीं से इन्हें सूफ़ियों की सहृदयता और विश्वबंधुत्व की भावना प्राप्त हुई।

इनकी कविता उच्चकोटि की है। इन्होंने शेरशाह के राजत्वकाल में सूफ़ी काव्यों में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'पद्मावत' की रचना की। उसमें प्रेम-मार्ग की मर्मस्पर्शिणी कथा है। इस कथा में ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का अच्छा समन्वय हुआ है। प्रकृति के नाना दृश्यों के द्वारा अज्ञात के प्रति जो संकेत हैं वे जायसी की उच्च अनुभूति के परिचायक हैं। प्रबन्धकाव्यों में रामचरितमानस के पश्चात् पद्मावत का ही स्थान है, किन्तु भाषा और शैली की दृष्टि से जायसी गोस्वामी तुलसीदास के अग्रगामी कहे जा सकते हैं। इनकी कविता अवधी भाषा में सुन्दर दोहों और चौपाइयों में है और उच्चकाव्योचित सभी साहित्यिक गुणों से युक्त है। ये अलंकारों के पीछे नहीं दौड़े, प्रत्युत अलंकार स्वयं इनके पीछे दौड़े हैं। इसी से इनके काव्य में अर्थालंकारों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इनने सादृश्य-मूलक अलंकारों का, जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का अधिक प्रयोग किया है। हेतूत्प्रेक्षा के ये विशेष प्रेमी जान पड़ते हैं। इनकी उपमाएँ प्राकृतिक और उत्प्रेक्षाएँ मर्मस्पर्शिणी हैं। उत्प्रेक्षाओं के लिये ये और 'सूर' दो ही प्रसिद्ध हैं। प्रेमगाथाकारों में ये सर्वश्रेष्ठ हैं। इनकी प्रेम की पीर बड़ी ही गभीर है। अबतक इनके २ ग्रंथ मिले हैं—पद्मावत और अखरावट।

कबीर

(जन्म-संवत् १४५५ अथवा १४५६, मरण-संवत् १५७५ वि०)

निर्गुण संत-संप्रदाय के प्रधान महात्मा, 'कबीरपंथ' के प्रवर्तक तथा हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम रहस्यवादी कवि कबीर की जीवनी अत्यन्त विवादग्रस्त है। कोई इन्हें जन्मत: मुसलमान मानता है तो कोई हिन्दू। इनका जन्म सं० १४५५ अथवा १४५६ में माना जाता है। इनके ही कथन—"मसि कागज़ छूवो नहिं, कलम गहो नहिं हाथ" से यह सिद्ध है कि वे कुछ पढ़े-लिखे न थे। उसका ज्ञान सत्संग का फल था। उनकी कविता में साहित्य ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं, और न उनके छन्दों पर हँसना उचित है; क्योंकि न तो वे पंडित थे और न विशेषज्ञ ही। प्रतिभा ही उनके महत्त्व

का मूलकारण है। उसी के कारण वे महात्मा कहलाते हैं और उसी के कारण महाकवि भी।

उन दिनों प्रसिद्ध रामोपासक स्वामी रामानन्द का प्रभाव ख़ूब बढ़ रहा था और छोटे बड़े, ऊँच नीच सब तृप्त हो रहे थे। अतः कबीर पर भी भक्ति का यह संस्कार बाल्यावस्था से ही पड़ा होगा। कबीर को रामनाम रामानन्दजी से ही प्राप्त हुआ। इनने हिन्दू सन्यासियों, वैष्णव संप्रदाय के संतों और सूफ़ियों का ख़ूब सत्संग किया। हिन्दू संतों से इनने ज्ञान-मार्ग की बातें लीं और सूफ़ियों से प्रेमतत्व। इस प्रकार इनने अपना एक अलग पंथ चलाया। वे राम राम तो कहते थे, पर उनके राम निराकार, निर्विकार एवं सर्वव्यापी थे, सगुणोपासकों के राम नहीं। राम पर उनका दृढ़ विश्वास और सच्चा प्रेम था। उनकी भक्ति निष्काम और वैराग्य अडोल थी। उपासना के बाह्यस्वरूप पर आग्रह करनेवाले और कर्मकाण्ड को प्रधानता देनेवाले पंडितों और मुल्लाओं, दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई और राम रहीम की एकता समझा कर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया।

उन्होंने ख़ूब देशाटन किया था और हर प्रकार के जानकारों का साथ किया था। उसका प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ा। यद्यपि वे अपनी बोली 'पूरबी' बतलाते हैं तथापि उसमें अवधी, ब्रज, खड़ी, बिहारी, पंजाबी और राजस्थानी के साथ फ़ारसी अरबी तक का मेल है।

कबीर ने साखी, पद, रमैणी आदि शैलियों में कविता की है, पर साखी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अलंकारों में केवल उपमा और रूपक का ही कहीं-कहीं प्रयोग मिलता है। इनकी अन्योक्तियाँ बड़ी ही प्रभावोत्पादक हैं और रहस्य तो इनमें प्रायः स्थल स्थल पर है :—

"सार सार तो तुलसी कहिगये, सूरा कहेसि अनूठी।
बची खुची सो कबिरा कहिगा, और कहैं सब झूठा।"

वाली बात बिलकुल सत्य प्रतीत होती है।

कबीर की विशेष जानकारी के लिये देखिये :—

(१) प्रो० रामकुमार वर्मा का 'कबीर का रहस्यवाद'

(२) हरिहर निवास द्विवेदी का 'महात्मा कबीर'

(३) अयोध्यासिंह उपाध्याय की 'कबीर वचनावली'।

———

सूरदास

(संवत् १५४०-१६२० वि०)

अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदासजी का जन्म-काल सं० १५४० के लगभग ठहरता है। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम रामदास, और जन्मस्थान मथुरा से आगरा जानेवाली सड़क पर रुनकता (रेणुका क्षेत्र) नामक गाँव था। आप श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और मथुरा के पास गऊघाट पर रहा करते थे। आप पूर्णभक्त एवं ललित गायक थे। आपके उपास्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण थे। भक्तों में गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति सेव्य-सेवकभाव की कही जाती है। और सूरदासजी की सख्य भाव की। आप उद्धव के अवतार कहे जाते हैं। आपकी मृत्यु पारासोली गाँव में गोसाईं विट्ठलनाथजी के सामने, संवत् १६२० के लगभग हुई।

श्रीवल्लभाचार्य की आज्ञा से आपने श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध की कृष्णलीला विस्तृत रूप में सुंदर सुललित गीतों में लिखी। वही ग्रंथ सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रंथराज में सवालाख पद कहे जाते हैं, किन्तु अबतक ५-६ हज़ार पदों से अधिक नहीं मिले हैं। इनमें वात्सल्य और शृंगार-रस की अपूर्व झलक है। यद्यपि आपने तुलसी के समान जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं का चित्रण नहीं किया, और न तुलसी के समान लोक-संग्रह का भाव ही उनमें मिला है, पर जिस सीमित क्षेत्र को उन्होंने चुना था उसमें उनका अधिकार असीम था। बाल लीलाओं का जितना विशद वर्णन सूर ने किया उतना हिन्दी के अन्य किसी कवि ने नहीं किया। सूर की पवित्र वाणी में जो अनूठी उक्तियाँ आप-से-आप आकर मिल गई हैं, अन्य कवि उनकी जूठन से ही सन्तोष कर सकते हैं। सूक्ष्मदर्शिता और मधुरता में सूर तुलसी से भी आगे बढ़े हुए मिलते हैं। आपकी उत्प्रेक्षाएँ बड़ी ही कोमल तथा ऊँची हैं। वास्तव में ये हिन्दी काव्य-गगन के सूर्य हैं।

भक्त मीरा

मीरा जोधपुर के संस्थापक राठौर राजा राव जोधाजी की प्रपौत्री तथा मेवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ कुमार कुंवर भोजराजजी की धर्मपत्नी थीं। इनका जन्म संवत् १५५५ और १५६१ के बीच में माना जाता है।

बाल्यावस्था से ही मीराबाई को गिरधरलाल का इष्ट होगया था। कारण यह था कि माता पिता का देहावसान हो जाने के कारण इनके लालन-पालन का भार ईदाजी पर पड़ा था। ईदाजी चतुर्भुज भगवान् के उपासक तथा वैष्णव मतावलम्बी भक्त-हृदय राणा थे, अतएव उनका प्रभाव मीरा पर पड़ना स्वाभाविक था।

विवाह के केवल १० वर्ष पश्चात् ही मीरा के पति का स्वर्गवास हो गया। अतः कृष्ण की अनन्य भक्ति और सतत संत-समागम ही मीरा का एकमात्र अवलंबन होगया। ये मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्णभगवान् की मूर्ति के सामने आनन्दमग्न होकर नाचतीं और गाती थीं जिसके कारण इनके देवर महाराणा विक्रमाजीत की कुल-प्रतिष्ठा के भय से इनकी नहीं पटती थी। कहते हैं कि एक बार उन्होंने मीरा पर विष-प्रयोग तक किया था, पर उसका इन पर कोई प्रभाव न हुआ।

राजस्थान में जन्म और निवास होने के कारण इनकी कविता की भाषा राजस्थानी भाषा से प्रभावित है। इनकी कविता का मुख्य गुण भाषा की सरलता और भाव की तल्लीनता है। वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप म करती थीं। सम्पूर्ण संसार में वे गिरिधर गोपाल को पुरुष मानती थीं, अन्य सबको गोपियाँ।

तीर्थ-यात्रा करते हुए संवत् १६०३ में द्वारिकाधाम में इन्हें निर्वाण मिला। इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं—नरसीजी का मायरा, गीत गोविन्द की टीका, राग गोविन्द और राग सोरठ के पद।

गोस्वामी तुलसीदास

(संवत् १५८९-१६८० वि०)

हिन्दी भाषा की सम्पूर्ण शक्ति का चमत्कार दिखानेवाले और हिन्दी साहित्य को सर्वोच्च आसन पर बैठानेवाले भक्तशिरोमणि तुलसीदास का जन्म-संवत् १५८९ माना जाता है। महाभाग आत्माराम दुबे इनके पिता और तुलसी माँ थीं। प्रायः सभी प्राचीन कवियों के समान तुलसी के जन्मस्थान के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। बहुमत युक्तप्रांत के बाँदा

ज़िले में राजापुर ग्राम के पक्ष में है। लड़कपन में ही या तो इनके माता पिता ने इन्हें त्याग दिया था या इनके माता पिता की मृत्यु होगई थी।

आश्रयहीन इधर-उधर घूमते-फिरते ये रामानंदी साधु नरहरिदास की शरण में जा पहुँचे जिनने इन्हें शिक्षा दीक्षा दी।

तुलसीदासजी अपनी पत्नी पर अत्यंत अनुरक्त थे। एक दिन वह इन्हें सूचित किये बिना अपने मायके चली गई, किन्तु पीछे पीछे पति को भी आया देख उसे कुछ लज्जा हुई और कुछ क्रोध भी। उसने उस समय यों कहा :—

"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति॥

यह बात तुलसी को लग गई और वे विरक्त हो लौट पड़े। अब आपने तीर्थ-यात्रा प्रारंभ की, और काशी, अयोध्या, पुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरिकाश्रम, कैलास और मानसरोवर आदि स्थानों में भ्रमण कर १४ वर्षों के बाद चित्रकूट आये। मथुरा, वृन्दाबन आदि कृष्ण तीर्थों की भी इन्होंने यात्रा की थी। इस भ्रमण में आपने बड़े बड़े महात्माओं की संगति की थी। इस सत्संग से उन्हें जो लाभ हुआ उसकी झलक उनकी संत असंत वन्दना में अच्छी तरह मिलती है।

भ्रमण कर चुकने के बाद कभी आप काशी में रहते थे और कभी अयोध्या में। सदाचार, त्यागपूर्ण और सात्विक जीवन व्यतीत करते हुए श्रावण कृष्ण ३, स० १६८० को काशी में, असीघाट पर आपने अपनी इहलौकिक लीला समाप्त की।

आपने अवधी और ब्रज दोनों ही भाषाओं तथा अपने समय तक प्रचलित सभी काव्यशैलियों में कविता की है। रामचरितमानस की भाषा अवधी है। आपके रचे वीर रसोपयुक्त छन्दों में वीर-गाथा-काल की छप्पय-पद्धति, गीतावली और विनयपत्रिका में विद्यापति और सूर आदि की गीत-पद्धति, कवितावली में गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति, दोहावली और रामाज्ञा में कबीर की नीति सम्बन्धिनी बानी की दोहा-पद्धति, और रामचरितमानस में जायसी आदि प्रेमगाथाकार सूफ़ियों

की दोहे चौपाईवाली प्रबन्ध-पद्धति मिलती है। सभी में आपने पूर्ण सफलता पाई है। इसके सिवाय आपने सभी रसों की कविता की है, पर मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं किया है। निस्संकोच सबके सामने पढ़ा जा सकने योग्य प्रेम और शृङ्गार का वर्णन गोस्वामीजी का ही है। दूसरे कवि किसी एक भाषा, शैली और रस की ही कविता करने में सफल होते हैं, परन्तु गोस्वामीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी, और काव्य-कुशलता सर्वाङ्गपूर्ण थी।

आपने मानव-हृदय की जितनी भिन्न भिन्न परिस्थितियों का गम्भीर अभिव्यंजन किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं किया। इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लोक-पावन चरित्र को अपना काव्य-विषय बनाकर उन्होंने उसमें मानव-जीवन की व्यापक व्याख्या बड़ी सहृदयता और चतुरता से की है। समाज के उत्थान, कौटुम्बिक-स्नेह एवं पारस्परिक सहृदयता का जितना अधिक ध्यान तुलसीदासजी ने रखा है उतना अन्य कोई कवि रख ही नहीं सका है। यही कारण है कि राजा से रंक तक इनकी कृति पर मुग्ध है।

भाषा को भावों के अनुरूप मोड़ने में गोस्वामीजी अद्वितीय थे। उनकी-सी भाषा की सफाई और किसी कवि में नहीं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों तथा तथ्यों को प्रस्फुटित करते पाये जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं।

गोस्वामीजी के रचे बारह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। रामचरितमानस विशेष प्रसिद्ध ग्रंथ है। अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों में दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्नावली और विनयपत्रिका बड़े हैं, और रामलला नहछू, पार्वती-मङ्गल, जानकीमङ्गल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी और कृष्ण गीतावली छोटे।

रहीम

(संवत् १६१०-१६८२ वि०)

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना अकबर बादशाह के अभिभावक प्रसिद्ध मुग़ल सरदार बैरमखाँ के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० में हुआ। ये संस्कृत-

अरबी और फ़ारसी के पूर्ण विद्वान्, और हिन्दी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ कवि थे। ये दानी और परोपकारी ऐसे थे कि अपने समय के कर्ण माने जाते थे। अकबर के समय में ये प्रधान सेनानायक और मंत्री थे, और अनेक बड़े बड़े युद्धों में भेजे गये थे। इन्हें जागीर में बहुत बड़े बड़े सूबे और गढ़ मिले थे।

लड़ाई में धोखा देने के अपराध में एकबार जहाँगीर के समय में इनकी सारी जागीर ज़ब्त होगई और ये क़ैद कर लिये गये। कारावास से मुक्त होने पर इनकी आर्थिक अवस्था कुछ दिनों तक अत्यन्त शोचनीय रही। ऐसे समय याचकों की यथेष्ट सहायता कर सकने में असमर्थ होने के कारण इनके दानी हृदय को बड़ी वेदना होती थी। अपनी उस अवस्था के अनुभव को व्यंजना इन्होंने इस दोहे में की है :—

"तब ही लौं जीबो भलो दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥"

इनका संसार का अनुभव विस्तृत एवं बड़ा गहरा था। ऐसे अनुभवों के हृदयस्पर्शी पक्ष को ग्रहण करने की भावुक क्षमता इनमें अद्वितीय थी। अपने उदार और उच्च हृदय को संसार के वास्तविक व्यवहारों के बीच रखकर जो संवेदना इन्होंने प्राप्त की है उसी की व्यंजना अपनी कविता में की है। तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी भाषा भू-भाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं। इनके दोहों में सच्ची मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झाँक रहा है। वे वृन्द और गिरधर के पद्यों के समान कोरी नीति के पद्य नहीं हैं, उनमें बह रहे हैं भारतीय जीवन और हिन्दुत्व के प्रति उदार श्रद्धा और प्रेम के भाव। उन्हें राम और रहीम की एकता पर विश्वास था। भारत की वर्तमान कलहान्ध जनता को रहीम-जैसे अनुभवी, उदार और परोपकारी पथप्रदर्शकों की नितान्त आवश्यकता है।

गोस्वामीजी की ही भाँति रहीम अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं पर समान रूप से अधिकार रखते थे। गोस्वामीजी की रचनाओं की भाँति इनकी रचनाएँ भी जनता में अत्यधिक प्रचलित हुईं। गोस्वामीजी से इन की भेंट हुई थी और दोनों में सौहार्द-भाव भी था। कहते हैं कि रहीम के बरवै छन्दों से ही प्रभावित होकर तुलसीदासजी ने बरवै रामायण की रचना की थी।

यद्यपि रहीम सर्वसाधारण में अपने दोहों के लिये ही प्रसिद्ध हैं, पर इन्होंने बरवै, कवित्त, सवैया, सोरठा, पद सबमें थोड़ी-बहुत रचना की है। रहीम का देहावसान संवत् १६८२ में हुआ।

रहीम दोहावली या सतसई, बरवै-नायिका-भेद, बरवै, शृङ्गार सोरठ, मदनाष्टक, रास पंचाध्यायी, नगरशोभा आदि इनके बनाये हुए ग्रंथ हैं। उनकी कविता के दो संग्रह 'रहीम रत्नावली' और 'रहिमनविलास' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत संग्रह रहिमनविलास के आधार पर किया गया है।

केशवदास

(संवत् १६१२-१६७४ वि०)

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। ओरछानरेश राजा इन्द्रजीतसिंह के आप सुसम्मानित एवं प्रभावशाली राज-कवि थे। इनके घराने में बराबर संस्कृत के अच्छे पंडित होते आए थे; अतएव केशवदास संस्कृत भाषा के पंडित एवं साहित्य-शास्त्र के विद्वान् थे। इनके पहले कुछ कवियों का ध्यान रस, अलंकार आदि काव्यांगों के निरूपण की ओर जा चुका था; किन्तु साहित्य-शास्त्र के सभी अंगों का सम्यक् विवेचन केशव ने ही सबसे पहले किया। ये काव्य में अलंकारों की प्रधानता माननेवाले चमत्कारवादी कवि थे। इन्होंने 'रीति' पर दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे—"कवि प्रिया", और "रसिक प्रिया।" इन ग्रंथों की रचना बहुत प्रौढ़ है। इन्हीं दो ग्रंथों के कारण ये रीति कवियों में पहले आचार्य ठहरते हैं।

इनका प्रबन्ध-काव्य रामचंद्रिका भी बहुत प्रसिद्ध है, किन्तु इसमें इन्हें वैसी सफलता नहीं हुई है। ग्रन्थ को देखने से स्पष्ट लक्षित होता है कि वह केवल चमत्कार और शब्द-कौशल दिखाने के लिये रचा गया है न कि हृदय की सच्ची प्रेरणा से।

केशव की कविता कठिन होने के कारण आपको 'कठिन काव्य का प्रेत' कहा गया है और कहावत चली आती है कि—

"कवि को दीन न चहै बिदाई, पूछै केशव की कविताई"।

आपने कुल आठ ग्रंथ रचे हैं, जिनमें से रसिक प्रिया, कवि प्रिया और रामचन्द्रिका ही सुविख्यात हैं। प्रस्तुत अंश रामचन्द्रिका से लिया गया है।

रसखान

(संवत् १६४०-१६८५ वि०)

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। ये अपने को शाही ख़ानदान का भी बतलाते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी के ये बड़े कृपापात्र शिष्य थे। बाल्यकाल से ही ये बड़े प्रेमी थे। अन्त में इनका प्रेम श्रीकृष्णभक्ति में परिणत हुआ। ब्रज की अनुपम मधुरिमा पर वे मुग्ध हो गये। अपनी कविता के लिये इनने ब्रजभाषा को ही अपनाया। शुद्ध ब्रजभाषा का जो चलतापन और सफ़ाई इनकी रचना में है वह घनानन्द की कविता के अतिरिक्त शायद ही किसी और कवि की कृति में हो। इनके भाव सरस और गंभीर हैं। शब्दाडम्बर और चमत्कार इनकी कविता में प्रायः अप्राप्य हैं। दूसरे कृष्णभक्तों के समान इन्होंने गीत काव्य का आश्रय न लेकर कवित्त और सवैयों में अपने सच्चे प्रेम की व्यंजना की है। अनुप्रास की सुन्दर छटा होते हुए भी भाषा की चुस्ती और सफ़ाई कहीं नहीं जाने पाई। हिन्दी के मुसलमान कवियों में रसखान का परमोच्च स्थान है। इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—(१) प्रेम-वाटिका और (२) सुजान रसखान।

सेनापति

सेनापति की जन्मतिथि तथा मृत्युतिथि के विषय में कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। इनका जन्मकाल संवत् १६४६ के आसपास माना जाता है। अनूपशहर (बुलन्दशहर) निवासी पं० परशुराम दीक्षित इनके पितामह और पं० गंगाधर इनके पिता थे। इनका असली नाम क्या था इसका भी कोई पता नहीं; सेनापति तो उनका उपनाम था।

ये स्वाभिमानी प्रकृति के कवि थे, अतः दूसरों की कही हुई बातों को दोहराने को वे हेय दृष्टि से देखते थे। ये प्रधानतया राम के भक्त थे, यद्यपि इनकी रचनाओं में कृष्ण तथा शिव सम्बन्धी छंद भी पाये जाते हैं।

इनकी रचनाओं से पता चलता है कि इन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था। संस्कृत के कवियों की भाँति इन्होंने ऋतुओं के व्यापारों की बहुत सूक्ष्म और संश्लिष्ट योजना की है। इनकी कविता बहुत ही हृदयस्पर्शिणी है। वह माधुर्य और प्रसाद-गुण से ओतप्रोत है। इनकी भाषा में बहुत-कुछ माधुर्य ब्रजभाषा का ही है। संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों का प्रयोग कम हुआ है। जैसे एक ओर इनमें पूरी भावुकता थी, वैसे ही दूसरी ओर चमत्कार लाने की निपुणता भी। इनकी रचनाओं में अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार-रस का अधिक विस्तार पाया जाता है। शृंगारी कवियों की रचनाओं में बाह्य उपकरणों द्वारा भाषा को विभूषित करने का आग्रह विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है—फलतः उनमें अलंकारों की तड़क भड़क अधिकतर हुआ करती है; किन्तु सेनापति की भाषा शृंगार-रस की होते हुए भी उसमें अनुप्रास और यमक की प्रचुरता कहीं भी भद्दी और कृत्रिम नहीं होने पाई है। इन्हें शब्दश्लेष इतना प्रिय था कि इन्होंने कवित्त रत्नाकर की पहली तरंग में ही श्लिष्ट रचनाओं को रक्खा है।

इनका षट्-ऋतु-वर्णन हिन्दी में अद्वितीय है। इनमें इनकी प्रकृति-निरीक्षण की असाधारण तीव्रता का पता चलता है। इनके बारहमासे के अधिकांश कवित्त प्रचलित परंपरा के अनुसार उद्दीपन विभाव की दृष्टि से लिखे गये हैं, किन्तु ऐसे भी छन्द पाए जाते हैं जिनमें कवि प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण करने में संलग्न है। ग्रीष्म-वर्णन में काव्योचित भावुकता देखते ही बनती है।

'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य कल्पद्रुम' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। यह संग्रह उमाशंकर शुक्ल द्वारा संपादित 'कवित्त रत्नाकर' के आधार पर किया गया है।

बिहारी

(संवत् १६६०–१७२० वि०)

कविवर बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर स्टेट के 'बसुआ' गोविन्दपुर

में हुआ था। ये माथुर चौबे कहे जाते हैं। इनके पिता का नाम केशवराय था। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह (केशवराय) प्रसिद्ध कवि केशवदास ही थे।

बिहारी की बाल्यावस्था बुँदेलखंड में बीती, पर तरुणावस्था में ये मथुरा में अपनी ससुराल में रहे। जयपुर के मिर्ज़ा राजा महाराज जयसिंह के आश्रय में रहकर आपने सतसई की रचना की थी।

आप शृंगारी कवि थे। शृंगार-रस के ग्रंथों में आपकी सतसई को उच्चस्थान प्राप्त है। सतसई के अतिरिक्त आपने और कोई ग्रंथ नहीं लिखा—फिर भी आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। इनकी सतसई इतनी लोकप्रिय हुई कि उसकी पचासों टीकाएँ रची गईं। इनका सबसे उत्तम और प्रामाणिक संस्करण बड़ी मार्मिक टीका के साथ प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ और ब्रजभाषा के प्रधान स्वर्गीय कवि श्रीयुत जगन्नाथदासजी रत्नाकर ने निकाला है। उसी के आधार पर यह संकलन तैयार किया गया है।

बिहारी ने दोहा-रचना में विशेष सफलता पाई है। दोहे में सफलता-पूर्वक कुछ कहना सुनना कठिन बात है, क्योंकि इस छंद का प्रयोग करने के लिये कवि को अपने भावों को अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में रखना पड़ता है। यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप से वर्तमान थी। इसीसे वे दोहा-ऐसे छोटे छंद में इतना रस भर सके हैं। किसी ने ठीक कहा है कि—

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, बेधैं सकल सरीर॥"

अलंकारों की योजना भी कवि ने बड़ी निपुणता से की है। किसी-किसी दोहे में कई अलंकार उलझे पड़े हैं, पर भद्दापन कहीं नहीं आया है।

इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कहीं कहीं बुंदेलखंडी की झलक भी मिलती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मोड़कर विकृत करने की आदत पाई जाती है; किन्तु बिहारी इस दोष से बहुत कुछ मुक्त हैं। इनकी वाक्य-रचना व्यवस्थित है।

(विशेष जानकारी के लिये देखिये—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कृत 'बिहारी की वाग्विभूति'।)

भूषण

(जन्म लगभग संवत् १६७०, मरण १७७२ वि०)

भूषण का असली नाम क्या था, इसका पता नहीं। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी थी. इसी से ये 'भूषण' के नाम से विख्यात होगये। ये प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। कानपुर ज़िले में तिकवाँपुर के रहने वाले थे और त्रिपाठी कुलोत्पन्न कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

भूषण राष्ट्रीय कवि थे। आपने छत्रपति महाराज शिवाजी और पन्ना के महाराज छत्रसाल की कृतियों को अपने वीर काव्य का विषय बनाया। ये दोनों इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे, हिन्दू-धर्म के संरक्षक थे और अन्याय-दमन में तत्पर रहते थे। इन वीरों का जिस उत्साह से सारी हिन्दू जनता स्मरण करती है उसी की व्यंजना भूषण ने की है। अतः वे हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं। राष्ट्रीयता की जिस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने वीर कविता की, वह तो उनके प्रत्येक छंद में वर्तमान है। इन वीर काव्यों की कोई झूठी ख़ुशामद नहीं कह सकता।

यों तो भूषण की सभी रचनाएँ ओजस्विनी और वीरदर्प से भरी हुई हैं, परन्तु उनकी शिवा बावनी में उपर्युक्त गुणों की पराकाष्ठा दीख पड़ती है। इनकी भाषा ओजपूर्ण तो है पर अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन, शब्दों का तोड़-मरोड़ और मनगढ़न्त शब्द इनकी कविता में अधिक मात्रा में मिलते हैं। इनके 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी', 'छत्रसाल दसक', 'भूषण हजारा', 'भूषण-उल्लास', 'दूषण उल्लास', आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं; किन्तु पहले तीन ग्रन्थों और कुछ फुटकर कविताओं के सिवाय आजकल और कुछ नहीं मिलता।

प्रस्तुत संकलन श्रीयुत ब्रजरत्नदास, बी० ए०, एल-एल० बी०, द्वारा संपादित 'भूषण ग्रन्थावली' के आधार पर किया गया है।

(पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित भूषण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते। इस विवाद के लिये उनका 'भूषण विमर्श, नामक ग्रन्थ देखिये।)

पद्माकर

(जन्म-संवत् १८१०, मरण-संवत् १८९० वि०)

कविवर पद्माकर तैलंग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के तृतीय पुत्र थे। आपका जन्म सागर में हुआ था। आप रीतिकाल के अन्तिम प्रसिद्ध प्रतिनिधि कवि हैं। रीति-कालीन प्रवृत्ति के अनुसार इनकी कविता में भी शृङ्गार-रस की प्रधानता है। इनकी भाषा का प्रवाह बड़ा ही सुन्दर और चमत्कारयुक्त है। अनुप्रासों का अनुराग आपका विशेष गुण है, जो कभी कभी दोष की सीमा तक पहुँच जाता है। इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हाव-भाव-पूर्ण मूर्ति विधान करती है कि पाठक मानों प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। भाव के अनुसार भाषा का उपयोग करने में आपको तुलसी के ही समान पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

कविता द्वारा इन्होंने इतना धन और यश कमाया कि ये राजसी ठाट-बाट से रहते थे। अन्तिम काल में आप कानपुर गंगा तट पर चले आये जहाँ सं० १८९० में इनका शरीरपात हुआ। जगद्विनोद, गंगा-लहरी, हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभरण, प्रबोध पचासा आदि आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

(विशेष जानकारी के लिये "पद्माकर की काव्य-साधना" नामक पुस्तक देखिये।)

दीनदयालगिरि

(जन्म-संवत् १८५९, मरण-संवत् १९१५ वि०)

गोस्वामी बाबा दीनदयालगिरि का जन्म काशी के पाठक-कुल में हुआ था। आप संस्कृत और हिन्दी दोनों के अच्छे विद्वान् और अत्यन्त ही सहृदय और भावुक कवि थे। भाषा पर आपका बहुत ही अच्छा अधिकार था। इनकी भाषा साहित्यिक तथा सुव्यवस्थित है। जिस प्रकार ये अपनी भावुकता हमारे सामने रखते हैं, उसी प्रकार चमत्कार-कौशल दिखाने में भी नहीं चूकते। ये बहुरंगी कवि थे। रचना की विविध प्रणालियों पर

इनका पूर्ण अधिकार था, आपकी शैली सरस, पद-विन्यास सरल, तथा शब्द-चयन अलंकृत है।

इनका 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' हिन्दी साहित्य में एक अनमोल वस्तु है। आपने लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों विषयों पर सुन्दर, मर्मस्पर्शिणी और प्रभावोत्पादक अन्योक्तियाँ लिखी हैं। इनकी सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की नहीं हुई।

'अन्योक्ति कल्पद्रुम' के अतिरिक्त 'अनुराग बाग', 'वैराग्य दिनेश', 'विश्वनाथ नवरत्न', दृष्टान्त तरंगिणी' आदि आपके लिखे प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(संवत् १९०७—१९४२ वि०)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बंगाल के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंशज थे। आपके पिता ४० ग्रन्थों के रचयिता, गिरधर उपनामधारी बा० गोपालचन्द्र थे। बाल्यावस्था में ही इन्हें माता पिता के वियोग का दुःख सहना पड़ा। पितृ-विहीन होने के कारण आपकी शिक्षा सुव्यवस्थित रूप से न हो सकी; किन्तु वे अद्भुत प्रतिभावान् थे। ५, ६ वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि एवं अलौकिक प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था। आप में उत्कट देश-प्रेम और प्रगाढ़ समाज-हितैषिता के भाव थे।

आप प्रारम्भ से ही राजनीति तथा समाज-सुधार विषयक शृङ्गार, हास्य, क्षोभ और व्यंगपूर्ण कविता एवं लेख लिखने लगे थे, अतः आपको पत्र पत्रिकाएँ निकालने की आवश्यकता पड़ी। 'निज भाषा उन्नति अहै, बिन उन्नति को मूल' पर इनका दृढ़ विश्वास था। अतः हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' नामक पत्र निकाले और वाचनालय आदि अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं। स्त्री-शिक्षा के भी ये कट्टर समर्थक थे। उनकी शिक्षा के लिये इन्होंने 'बाला बोधिनी' पत्रिका निकाली। इन पत्रिकाओं के द्वारा भारतेन्दु ने विविध विषयों पर गद्य और पद्य दोनों में स्वयं लिखा और दूसरों से लिखवाया। इस

प्रकार उच्चकोटि के कवियों और लेखकों का एक मंडल तैयार होगया, और हिन्दी के विविध क्षेत्रों में नवीन जाग्रति होगई।

आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आपने नाटक, आख्यायिका, काव्य, स्तोत्र, प्रहसन, धर्म, इतिहास, माहात्म्य, राजभक्ति आदि सभी विषयों और साहित्य के सभी अंगों के ग्रंथ लिखे हैं। आपकी कविता हिन्दी में नवीन प्रगति की पताका लेकर आई थी। गद्य की भाषा को जिस प्रकार परिमार्जित करके उसे बहुत कुछ चलता, मधुर और स्वच्छ-रूप उन्होंने दिया, उसी प्रकार काव्य की ब्रजभाषा को भी। उन्होंने ऐसे शब्दों को भरसक अपनी कविता से दूर रखा, जिनको बोलचाल से उठे कई सौ वर्ष हो गये थे और लोगों को अप्रिय होने पर भी कवित्तों और सवैयों में उपयुक्त होते थे। शब्दों के तोड़-मरोड़ और मनगढ़ंत शब्दों के प्रयोग की धारा रोकने का भी इनने भरसक प्रयत्न किया। रीति-कविता की गंदी गली से निकल शुद्ध वायु में विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा-पूरा प्राप्त है। शृङ्गारिक कविता की जिस प्रबल धारा का अवरोध करने में वीर कवि भूषण समर्थ नहीं हुए थे, भारतेन्दु उसमें पूर्णतः सफल हुए।

आपका महत्त्व आपके हिन्दी को राज्य-भाषा बनाने, हिन्दी को व्यवस्थित रूप देने और हिन्दी साहित्य के अवरुद्ध प्रवाह को नवीन मार्ग देने में है। हिन्दी कविता, नाटक और परिहासों द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न करना आपके जीवन का लक्ष्य था और उसमें आपने सफलता भी बहुत कुछ पाई।

आपका कृष्ण-प्रेम बड़ा ही गंभीर एवं अनन्य था। कविता के लिये आपने ब्रजभाषा को ही चुना था, यद्यपि खड़ी बोली में भी आपकी दो एक कविताएँ मिलती हैं। आपकी काव्य-भाषा अत्यन्त सरस और परिष्कृत होती थी। प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी, प्रेम तरंग, आपके काव्यों में तथा सत्य हरिश्चन्द्र, भारत दुर्दशा, नील देवी, चन्द्रावली (नाटिका) और वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (प्रहसन), नाटकों में प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

कविवर श्रीधर पाठक

(संवत् १९१६-१९८५ वि०)

भगवद्भक्त पं० लीलाधर के पुत्र पं० श्रीधर पाठक का जन्म आगरा प्रान्त के जोंधरी-नामक गाँव में सवत् १९१६ में हुआ था। आपकी बुद्धि बड़ी तेज़ थी। विद्यार्थी अवस्था में परीक्षाओं में आपका स्थान सदैव ऊँचा रहता था। अध्ययन समाप्त करने पर आपने सरकारी नौकरी करली और भिन्न भिन्न पदों में बड़ी सावधानी के साथ, एवं सर्वत्र सम्मान प्राप्त करते हुए काम किया। आप स्वभाव के सरल थे और समय का मूल्य करनेवाले थे।

आपने खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में ही काव्य-रचना की है किन्तु खड़ी बोली की कविताओं की अपेक्षा आपकी ब्रजभाषा की कविताएँ ही अधिक सरस और हृदयग्राहिणी हुई हैं। फिर भी आपकी सरस, श्रुतिमधुर और कोमल कविता ने यह दिखा दिया कि खड़ी बोली में भी ब्रजभाषा का सा माधुर्य लाया जा सकता है।

इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली नहीं हो पाई—ब्रजभाषा के स्यों, पै, ह्यौं, तिहुँ, सों आदि प्रयोग भी उसमें आये हैं।

अँगरेज़ी और संस्कृत दोनों के काव्य-साहित्य का इन्हें अच्छा परिचय था। आपकी रुचि बहुत ही परिष्कृत थी। भद्दापन इनमें न था—न रूप-रंग में, न भाषा में, न भाव में। अपनी रुचि के अनुसार न जाने कितने नये छन्द इन्होंने निकाले जो पढ़ने में बहुत ही मधुर लय पर चलते हैं।

आपको प्रकृति की रम्य क्रीड़ा-भूमि काश्मीर तथा अन्य पहाड़ी देशों में रहने का सुअवसर मिला था, जिसके फलस्वरूप आपके रसिक हृदय ने प्राकृतिक दृश्यों के साथ आंतरिक अनुराग प्राप्त कर लिया था। इस अनुराग की स्पष्ट झलक आपकी रचनाओं में देख पड़ती है।

आपमें देश-प्रेम था, समाज-सुधार की आकांक्षा थी, विधवाओं के प्रति समवेदना थी और शिक्षा-प्रचार की ओर अभिरुचि थी। आपने झावनी, रोला, सवैया और बरवै आदि भिन्न भिन्न शैलियों में कविता की है। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी आपको हिन्दी भाषा का जयदेव कहा करते थे और उनका कथन था कि यदि संसार में किसी पदार्थ में अमृत मिल सकता है, तो वह श्रीधर की कविता में ही।

आपके अँगरेज़ी कवि गोल्डस्मिथ के प्रसिद्ध ग्रंथों के अनुवाद 'एकान्त-वासी योगी', 'श्रान्त पथिक' और 'ऊजड़ ग्राम' बहुत प्रसिद्ध हैं। कालिदास के ऋतु संसार का अनुवाद भी सरस हुआ है। मौलिक ग्रंथों में 'गोखले-प्रशस्ति' और 'भारत गीत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(जन्म-संवत् १९२२ वि०)

हरिऔधजी का जन्मस्थान निज़ामाबाद (आज़मगढ़) है। वर्नाक्यूलर मिडिल की परीक्षा पास करके आप काशी में अँगरेज़ी पढ़ने गये, किन्तु अस्वस्थता के कारण आप अधिक काल तक नहीं पढ़ सके।

कुछ दिनों आपने अपने ही शहर में अध्यापकी की। इसके अनन्तर आप क़ानूनगो और फिर सदर क़ानूनगो के पद पर काम करते रहे। सन् १९२३ में आपने नौकरी से छुट्टी ली। अब आप काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं।

आपका साहित्यिक-जीवन ब्रजभाषा की रचनाओं से ही प्रारम्भ हुआ है। निज़ामाबाद में बाबा सुमेरसिंह द्वारा संचालित कवि-समाज में आप अपनी रचनाएँ पढ़ा करते थे। 'हरिऔध' नाम आपका उसी समय का है। आगे चलकर आप खड़ी बोली के प्रवाह में पड़े। खड़ी बोली के लिये आपने पहले उर्दू के छन्दों और ठेठ बोली को ही उपयुक्त समझा, क्योंकि इन छन्दों में खड़ी बोली अच्छी तरह मँज चुकी थी। इसके पश्चात् आपने संस्कृत छंदों और संस्कृत समस्त पदावली का आश्रय लिया। इस शैली का आपका 'प्रियप्रवास' ग्रंथ विशेष प्रसिद्ध है।

यद्यपि प्रियप्रवास में साहित्य-शास्त्र के अनुसार महाकाव्य के सब लक्षण नहीं पाये जाते, तथापि इसने हरिऔधजी को महाकवि के आसन पर आसीन करा दिया है। इसकी विशेषता भाव, सौन्दर्य और चरित्र-चित्रण में है। इसमें उपाध्यायजी ने कृष्ण के प्रति यशोदा, गोपी तथा राधा के स्नेह के वर्णन द्वारा मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

आपमें लोक संग्रह का भाव बड़ा प्रबल है। श्रीकृष्ण इस काव्य में ब्रज के रक्षक-नेता के रूप में अंकित किये गये हैं। वियोगिनी राधा को

लोक-सेवा में संलग्न कराकर उन्होंने उन्हें प्रिय-वियोग में हाय-हाय करने-वाली मात्र नहीं रहने दिया, प्रत्युत उनके चरित्र में नवीनता के संयोजन से उन्हें लोक-रक्षक कृष्ण की उपयुक्त प्रेयसी बनाकर अच्छा काम किया है।

इस काव्य में कई जगह संस्कृत शब्दों की ऐसी लंबी लड़ी बाँधी है कि हिन्दी को "है", "था", "किया", "दिया" आदि क्रिया रूपों के भीतर ही सिमट कर रह जाना पड़ता है। उनको भाषा और उसके व्याकरण को तोड़-मरोड़ भी करनी पड़ी है, इससे प्रसादगुण का अभाव होगया है।

'बोलचाल', 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' में आपने अपनी सरल, स्वाभाविक और बोलचाल की मुहावरेदार भाषा की भी झलक दी है।

ब्रजभाषा में आपने रस और नायिका-भेद पर 'रस-कलश' नामक ग्रंथ लिखा है। इसमें आपने साहित्य के नवरसों के बहुत बढ़िया उदाहरण रचे हैं और शृङ्गार-रस के अच्छे अंश भरकर उसकी रसराजकता पुनः प्रतिपादित की है। इसमें इनके ऋतुवर्णन भी अच्छे उतरे हैं, और दोहे भी मार्मिक हैं। हाल ही में आपका खड़ी बोली का एक और महाकाव्य 'वैदेही वनवास' प्रकाशित हुआ है।

आपकी गद्य-रचना भी अच्छी होती है। "ठेठ हिन्दी का ठाठ" और "अधखिला फूल" आपके मुख्य ग्रन्थ हैं।

प्राचीन संस्कृति में आस्था रखते हुए भी आप अछूतोद्धार और परदा-प्रथा को उठा देने के समर्थक हैं।

बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर'

(संवत १९२३–१९८९ वि०)

रत्नाकरजी काशी के प्रतिष्ठित रईस थे। आपने सन् १८८१ ई० में काशी के क्वींस कालेज से बी० ए० पास किया और फिर कुछ दिन अवागढ़ राज्य में नौकरी की। इसके पश्चात् आप अयोध्या के महाराजा प्रतापसिंह और उनके बाद वहीं की महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। आप ब्रजभाषा के आधुनिक सर्वोत्कृष्ट कवि थे। आपकी कविता बड़े बड़े पुराने कवियों के टक्कर की होती थी। पुराने कवियों में भी इनकी सी

सूझ और उक्ति-वैचित्र्य बहुत कम देखा जाता है। आपका अन्य साहित्यों का भी अध्ययन बहुत विस्तृत था। आपने अपने काव्यों में अँगरेज़ी की लाक्षणिकता की योजना की, पर कहीं भी विदेशीपन नहीं आया। लोकोक्तियों और उर्दू के मुहावरों की काव्योचित सामंजस्य के साथ योजना कर आपने भाषा की शक्ति तथा सौंदर्य को बढ़ाया।

आपके काव्यों में रसों की योजना बहुत अच्छी हुई है। 'हरिश्चन्द्र' में करुण, वीभत्स और भयानक रसों की बड़ी प्रभावोत्पादक धारा है। आपकी भाषा-शैली पद्माकरी कही जा सकती है। भाषा की सजावट आपकी विशेषता है। उपमा, वस्तूत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अलंकार रत्नाकरजी लाये हैं, जिनका नामकरण हमारी भाषा में नहीं हुआ है—जैसे, अँगरेज़ी का ओनोमोटोपोइया (Onomotopoea)

'हरिश्चन्द्र', गंगावतरण' और 'उद्धवशतक' आपके प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। बिहारी की सतसई का बिहारीरत्नाकर नाम से अत्यन्त प्रामाणिक एवं सटीक संस्करण भी आपने निकाला है। ब्रजभाषा में उच्चकोटि का कोई प्रबन्ध-काव्य नहीं है। ऐसी अवस्था में इनके गंगावतरण का महत्व अवश्य ऊँचा है।

(रत्नाकर की विशेष जानकारी के लिये देखिये कृष्णशंकर शुक्ल का 'कविवर रत्नाकर'।)

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

(जन्म-संवत १९४३ वि०)

बाबू मैथिलीशरण गुप्त चिरगाँव (झाँसी) निवासी कविता-प्रेमी एवं कवि श्री सेठ रामचरणजी के पुत्र हैं। पिता के कविता-प्रेम ने बालक मैथिलीशरण को भी प्रभावित किया। आपने एक दिन पिता की कापी में एक छप्पय लिखा था, जिससे प्रसन्न होकर पिता ने अच्छी कविता करने का आशीर्वाद दिया। अँगरेज़ी पढ़ने के लिये आप झाँसी भेजे गये थे, किन्तु अधिक समय खेलते-कूदते ही रहने के कारण आपको घर बुला लिया गया और वहीं आपकी पढ़ाई का प्रबन्ध किया गया।

बाल्यकाल में आप 'आल्हा ऊदल' नामक बुँदेलखंडी काव्य बहुत पढ़ा करते थे। इसका प्रभाव भी आपके हृदय पर अवश्य पड़ा होगा। यों तो आप बहुत पहले से ही काव्य-रचना करने लग गये थे, पर द्विवेदीजी (पं० महावीरप्रसाद) के प्रभाव और प्रोत्साहन से आपने अपनी भाषा का बड़ा ही परिमार्जित और सुंदर रूप खड़ा किया। आपकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत भारती' हुई, जिसे सर्वसाधारण ने, विशेषत: देशभक्ति-पूर्ण नवयुवकों ने बहुत पसंद किया। आपकी छायावाद की रचनाएँ भी उच्च-श्रेणी के कवियों से प्रशंसा पा चुकी हैं।

प्रबन्ध-कल्पना तथा चरित्र-चित्रण में आप पर बहुत अंशों में तुलसी-दासजी का प्रभाव पड़ा है, और कई एक स्थानों पर वाल्मीकि रामायण का भी। 'साकेत' में कैकेयी-मंथरा संवाद पर तुलसी की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। 'यशोधरा' में सिद्धार्थ के गृहत्याग पर उनकी स्त्री यशोधरा के स्त्री-हृदय का चित्रण अद्वितीय है। भरत का पावन चरित्र भी बड़ी कुशल लेखनी से अङ्कित किया गया है। जयद्रथवध में वीर और करुण दो विपरीत रस स्थान-स्थान पर अद्वितीय रूप में हैं। आपने हिन्दी-संसार को धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय और साहित्यिक कृतियाँ दी हैं। चन्द्रहास और तिलोत्तमा नाटक भी आपने लिखे हैं। आधुनिक राजनीतिक आंदोलन, प्रजातंत्र-शासन, साम्यवाद और उपयोगितावाद आदि की छाप भी 'साकेत' में मिलती है।

'पलासी का युद्ध', 'मेघनादवध', 'विरहिणी ब्रजांगना', 'उमरख़ैयाम की रुबाइयाँ' इत्यादि पुस्तकों का अनुवाद भी आपने किया है। 'रंग में भंग', 'किसान', 'पत्रावली', 'वैतालिक', 'हिन्दू', 'झंकार', 'पंचवटी', 'स्वदेश-संगीत', 'सैरिंध्री' आदि इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। सचमुच आप इस समय के प्रतिनिधि कवि हैं। वृद्धों तथा युवकों, प्राचीन विचारवालों तथा नवीन विचारवालों का आप एकसाथ मनोरंजन करते हैं।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

(संवत् १९४६–१९९४ वि०)

बाबू जयशंकर 'प्रसाद' काशी के सुप्रसिद्ध रईस बाबू देवीप्रसादजी सुंघनी साहु के पुत्र थे। आपने संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन करके

काशी के क्वीन्स कालेजिएट स्कूल में मिडिल तक अँगरेज़ी पढ़ी। पिता की मृत्यु हो जाने के कारण आगे न पढ़ सके। तथापि आपने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और अँगरेज़ी में घर पर ही अच्छी योग्यता प्राप्त करली। पिता की मृत्यु के पश्चात् घर और दुकान का काम आपके बड़े भाई करते थे, किन्तु वे भी शीघ्र ही चल बसे। अतः १७ वर्ष की अवस्था में ही आपको सारा बोझ अपने कधों पर लेना पड़ा। आप बड़े धीर, सरल और सरस हृदय थे। अतः आपने न केवल इस भार का अच्छी तरह वहन किया, वरन् अपनी बाल्यकालीन काव्याभिरुचि को भी जगाये रखा। कहते हैं कि आप सात आठ वर्ष की अवस्था से ही अपनी कवि-प्रतिभा दर्शाने लगे थे।

आपने साहित्य के अनेक अंगों की वृद्धि की। कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी इनके प्रिय विषय थे। हिन्दी में छायावाद और भिन्न तुकान्त कविता का श्रीगणेश आपने ही किया। पुरातत्व एवं दार्शनिक विषयों में भी आपकी रुचि और गति थी। आपकी कविता का एक मुख्य विषय प्रेम है। इनका प्रेम-दृश्य लौकिक सौन्दर्य पर कुछ देर टिककर अलौकिक लावण्य की ओर उन्मुख हो जाता है।

पहले आप ब्रजभाषा में कविता करते थे, जो उनके 'चित्राधार' नामक काव्य संग्रह में संकलित है। फिर इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य पाया जाता है और बहुत से अप्रचलित संस्कृत शब्द भी तत्समरूप में मिलते हैं। भाषा की क्लिष्टता और विचारों की दार्शनिकता के कारण कहीं-कहीं इनकी कविता कठिन होगई है।

'आँसू' इनका प्रशंसनीय काव्य है। 'कानन कुसुम' और 'झरना' इन की फुटकर कविताओं के संग्रह हैं। इनके नाटकों के अधिकांश कथानक प्राचीन भारत से सम्बद्ध हैं। 'विशाख', 'जन्मेजय का नागयज्ञ' 'अजातशत्रु' 'राज्यश्री', 'चंद्रगुप्त', 'प्रायश्चित', 'सज्जन', करुणालय', 'कामना' और 'एक घूँट' विशेष प्रसिद्ध हैं।

सुमित्रानंदन पंत

(जन्म–संवत् १९५८ वि०)

पंतजी हिन्दी के युगान्तरकारी कवि हैं। आधुनिक रहस्यवादी कवियों में आपका स्थान बहुत ही ऊँचा है। आपकी अनुभूति बहुत ऊँचे

दर्जे की है। भोलीभाली कलियाँ तथा गुंजन करनेवाले भौंरे ही आपके काव्य का वास्तविक संदेश दे देते हैं। प्रकृति के तो आप पूर्ण उपासक हैं। आपके विषयों में से एक विषय प्रेम है। प्रेम की परिधि के अंतर्गत आनेवाली, जितनी सुकुमार भावनाओं की व्यंजना 'ग्रंथि' से छोटे ग्रंथ में हुई है उतनी कम स्थानों पर मिलती है। अँगरेज़ी शैली में इन्होंने मानव तथा प्राकृतिक चित्रों को अंकित करने की चेष्टा की है और उसमें उन्हें सफलता भी मिली है।

इनका 'मौन निमंत्रण' हिन्दी कविता का अमर वरदान है। खड़ी बोली में इनकी सी कोमलता, सुस्वरता और मधुरता कदाचित् ही कहीं मिलेगी। आप संस्कृत गर्भित, मधुर और कोमल पदावली का ही सर्वत्र उपयोग करते हैं। अँगरेज़ी और बँगला का भी आपको अच्छा ज्ञान है। आजकल आपका ध्यान जीवन की वास्तविकता की ओर जारहा है।

आपके कुछ ग्रन्थ ये हैं :—

काव्य—'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रंथि', 'गुञ्जन', 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'पल्लविनी'।

नाटक—'ज्योत्स्ना'।

कहानी—'पाँच कहानियाँ'।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(जन्म-संवत १९५५ वि०)

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी का जन्म सं० १९५५ में बंगाल के मेदिनीपुर ज़िले की महिषादल नाम की रियासत में हुआ था। आपको अँगरेज़ी शिक्षा मैट्रिक तक ही मिली है। बंगाल में जन्म होने एवं बाल्यावस्था बीतने के कारण आपको बँगला भाषा एवं साहित्य का अच्छा ज्ञान है। आपकी कोमल-कान्त-पदावली का श्रेय अधिकांश में इसी को है। कुछ समय आपने दर्शन शास्त्रों के अध्ययन में भी लगाया है। इसी कारण आपकी कविता में दार्शनिक भाव अधिक मिला करते हैं। आधुनिक छायावादी कवियों में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। पहले आप बंगाली में कविता करते थे, पर आगे चलकर आपने हिन्दी क्षेत्र में पदार्पण किया। हिन्दी में अतुकांत छंदों का उपयोग तो पहले से ही हो रहा था; 'निराला' ने

स्वच्छंद छंदों का भी सूत्रपात किया। सम्भवतः इसी विशेषता के कारण उन्होंने अपना नाम 'निराला' रखा है। आपके स्वभाव की स्वतन्त्रता एवं निर्भीकता आपकी कविता में भी उतर आई है।

निरालाजी केवल कवि ही नहीं, उपन्यासकार और कहानी-लेखक भी हैं।

आपके कुछ ग्रन्थ ये हैं :—

काव्य—अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास।

उपन्यास—अप्सरा, अलका, निरूपमा।

निबन्ध—प्रबन्ध-पद्य।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

(जन्म-संवत् १९६१ वि०)

श्रीमती चौहान का जन्म प्रयाग में सं० १९६१ में हुआ था और विवाह सं० १९७६ में। आप प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में अध्ययन कर रही थीं, परन्तु असहयोग आन्दोलन ने इन्हें वहाँ से खींच लिया।

कविता करने की रुचि आपमें बचपन से ही है। आपकी प्रारंभिक कृतियों को प्रकाशित करने और आपको उस पथ पर आगे बढ़ाने का श्रेय 'कर्मवीर' को है। धीरे धीरे आपकी कवित्व-शक्ति ने प्रौढ़ता प्राप्त की और आप हिन्दी संसार में चमक उठीं। आपमें देशानुराग है और प्रत्यक्ष संसार के प्रति प्रेम है। अपने देश की पुकार पर मर मिटनेवालों की स्मृति में ही इन्हें रोना भाता है नकि विरह की व्यथा में। बाल्यजीवन आपकी कविता का मुख्य विषय है। आपकी रचनाओं में 'नारी प्रकृति' एवं 'मातृ हृदय' का अच्छा चित्रण मिलता है। भावों की स्पष्टता, वर्णन की सजीवता और भाषा की सरलता के कारण आपने कविता-प्रेमी हृदयों में अपने लिये जो स्थान बना लिया है वह अभी तक तो अछूता बना है।

आप कहानियाँ लिखने में भी दक्ष हैं। आपकी कहानियों के दो संग्रह 'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी' नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'मुकुल'

आपकी कविताओं का संग्रह है। प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको दो बार सकसेरिया पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। आप जबलपुर शहर की स्त्रियों की ओर से मध्यप्रान्तीय एसेम्बली की सदस्या हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा

(जन्म-संवत् १९६४ वि०)

आपके पिता बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा, एम० ए०, एल०-एल० बी०, फ़र्रुख़ाबाद के रहनेवाले थे। सन् १९०७ में श्रीमतीजी का जन्म हुआ और ग्यारह वर्ष की अवस्था में विवाह हो गया था। पिता स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती और ससुर लड़कियों के स्कूल जाने के कट्टर विरोधी थे। अतः विवाह के पूर्व तो आप पाठशाला में प्रचलित शिक्षा और घर पर संगीत चित्रकला आदि की शिक्षा प्राप्त कर सकीं, किन्तु वैवाहिक बन्धन ने कुछ काल के लिये वह क्रम तोड़ दिया, सन् १९२० में ससुरजी की मृत्यु के साथ ही वह रोक उठ गई। प्रयाग जाकर आपने एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की। इस अवस्था में आपकी बालापन की काव्याभिरुचि भी सजीव हो उठी और पहले की तुकबन्दियों की नींव पर अब गंभीर काव्य का प्रासाद निर्मित होने लगा। आपमें प्रेम सजग हो उठा है। उसमें वियोगजन्य दुःख तो है, किन्तु प्राप्ति की चाह नहीं; क्योंकि उसके प्राप्त होने पर वह आनन्द नष्ट होजायगा जो अप्राप्ति की अवस्था में—प्राप्ति के प्रयत्न में मिलता है। उसी में उन्हें जीवन की सार्थकता का आभास मिलता है और उसी में उन्हें सन्तोष मिलता है। दुखःवाद और नैराश्यवाद की छाप जितनी आपकी कविताओं पर पड़ी है उतनी आजकल के किसी हिन्दी कवि की कविता पर नहीं। रहस्यवाद का संकेत भी आपकी कविताओं में मिलता है, किन्तु वह विशेष व्यापक रहस्यवाद नहीं।

आप अँगरेज़ी की अलंकार और भाषा-शैली से भी प्रभावित हुई हैं। आपकी भाषा सरस, सरल और प्रसादगुणयुक्त है। आपकी कविताओं के संग्रह 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' एवं 'सान्ध्यगीत' नाम से निकले हैं।

परिशिष्ट

२

रस

संसार में सुख और दुःख के अनुभव सभी प्राणियों को होते हैं। बच्चे के शरीर में सूई चुभाने से वह (दुःख से) रोने लगता है, और भूख लगने पर उसे भोजन मिल जाता है तो वह सुख का अनुभव करता है। मनुष्य जब बालक रहता है तो उसे इन्हीं दो भावों का—सुख और दुःख का, अनुभव होता है; पर जैसे जैसे उसमें ज्ञान की वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उसके अनुभव में भी अनेकरूपता आने लगती है। बालक पहले मार खाने पर केवल रोकर अपना दुःख प्रगट करता है, पर जब वह यह जानने लगता है कि उसका दुःख कहाँ से आया है या उसको किसने दुःख दिया है तो वह उस दुःख से या तो बचने का यत्न करता है या दुःख देनेवाले को दुःख पहुँचाने के लिये तत्पर होता है। जब और बड़ा होता है तो वह यह समझने लग जाता है कि जिन कारणों से हमें दुःख होता है उन्हीं कारणों से दूसरों को भी दुःख हो सकता है, और जब दूसरों को उसी परिस्थिति में पड़ा देखता है तो वह स्वयं दुःख का अनुभव करता है। इस तरह यही सुख और दुःख के भाव रूप बदल बदल कर अनेक नामों से हममें उत्पन्न होते रहते हैं। इनमें से कुछ भाव ऐसे हैं जिनके उत्पन्न होने के लिये हमारे जीवन में अनेक अवसर आते रहते हैं और जो इसीलिये हमारे जीवन पर प्रभाव भी गहरा डालते हैं। यही भाव, जब विशेष रूप से बढ़ जाते हैं तो साहित्य में 'रस' कहलाने लगते हैं।

रसों की संख्या के सम्बन्ध में साहित्य-शास्त्रियों में एकमत नहीं है। हाँ बहुमत से वे ९ माने जाते हैं। उनके नाम ये हैं :—

१ शृङ्गार, २ हास्य, ३ करुण, ४ रौद्र, ५ वीर, ६ भयानक, ७ वीभत्स, ८ अद्भुत, ९ शान्त। पहले ही कहा जा चुका है कि भाव ही विशेष वृद्धि पाने पर रस हो जाते हैं; अतः सिद्ध है कि ९ रसों के लिये ९ भाव चाहिये। वे ९ भाव ऊपर गिनाये गये रसों के क्रम से ये हैं :—

१ रीति (प्रेम), २ हास, ३ शोक, ४ क्रोध, ५ उत्साह, ६ भय, ७ घृणा (जुगुप्सा), ८ विस्मय, और ९ शम (शान्ति)।

साहित्य शास्त्र में इन्हें 'स्थायी भाव' कहते हैं। ये भाव हमारे मन में स्थायी रूप से रहते है और अपने अनुकूल सामग्री पाते ही जग पड़ते हैं, दूसरे भाव बीच बीच में आकर इन्हें बढ़ाते घटाते हैं और चल देते हैं, पर ये स्थायी भाव बहुत देर तक ठहरते हैं; इसीलिए इन्हें 'स्थायी भाव' कहते हैं। जो भाव आते और चले जाते हैं उन्हें 'संचारी भाव' कहते हैं। साहित्य-शास्त्रियों ने ३३ संचारी भाव माने हैं।

भावों को जागरित और तीव्र करनेवाली सामग्री को 'विभाव' कहते हैं। ये विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन वह व्यक्ति या पदार्थ है जिसको लक्ष्य करके भाव का हृदय में उदय होता है और उद्दीपन वे सब परिस्थितियाँ हैं जो भाव को उद्दीप्त करने—पैना करने में काम आती हैं।

जब भाव हमारे हृदय में उत्पन्न होते हैं तो वे हमारी शारिरिक चेष्टा तथा आकृति में परिवर्तन उपस्थित करते हैं। इन्हें साहित्यिक भाषा में 'अनुभाव' कहते हैं।

इस तरह भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी के योग से रस की सृष्टि होती है।

नीचे रसों के उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) शृङ्गार रस का उदाहरण—

दोऊ जन दोऊ को अनूप रूप निरखत,
पावत कहूँ न छबि-सागर को छोर हैं।
'चिन्तामनि' केलि की कलानि के विलासनि सों,
दोऊ जन दोऊन के चित्तनि के चोर हैं॥
दोऊ जने मन्द मुसुकानि-सुधा बरषत,
दोऊ जने छक मोद-महँ दुहूँ ओर हैं।
सीताजू के नैन रामचन्द्र के चकोर भये,
राम नैन सीता-मुख-चन्द्र के चकोर हैं॥

(तुलसीदास)

(२) हास्य रस का उदाहरण—

हँसि-हँसि भजैं देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवैं हिमालय के उछाह में।

कहै 'पदमाकर' सुकाहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह में ॥
मगन भयेई हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसैं बड़े हँसि-हँसि कै उमाह में।
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा हँसैं,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में॥
(पद्माकर)

(३) करुण रस का उदाहरण—

जाथल कीने बिहार अनेकन, ताथल काँकरि बैठि चुन्यौ करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यौ करैं॥
'आलम' जौनके कुंजनि में करी खेल, तहाँ अब सीस धुन्यौ करैं॥
आँखिन में जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं॥
(आलम)

(४) रौद्र रस का उदाहरण—

बोरों सबै रघुवंश कुठार की धार मैं वारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ायकैं लच्छन लक्ष्य करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै बन सोक के भार मैं भूजों भरत्थहिं।
जौ धनु हाथ लियो रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहिं॥
(केशवदास)

(५) वीर रस के उदाहरण—

वीर चार प्रकार के होते हैं—दानवीर, दयावीर युद्धवीर और धर्मवीर। नीचे प्रत्येक के उदाहरण दिये जाते हैं :—

दानवीर

सम्पति कुबेर की जु पावे ताहि,
तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना।
कहे 'पदमाकर' सुहेम हय हाथिन से,
हलके हजारन के बितर बिचारै ना॥

गंज गज बकसे महीप रघुनाथ राय,
पाहि गज धोखे कहूँ काहू देय डारै ना।
याहि डर गिरजा गजानन कों गोई रही,
गिरितैं गरेतैं निज गोद तैं उतारै ना॥
(पद्माकर)

दयावीर

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुत ही को नरायन।
त्यों 'पदमाकर' लात लगे पर विप्रहू के पग चौगुने चायन॥
को अस दीनदयाल भयो दसरत्थ के लाल से सूधे सुभायन।
दौरे गयंद उबारिबे कों प्रभु बाहन छोड़ि उबाहने पायन॥
(पद्माकर)

युद्धवीर

सोहै अत्र ओढ़े जे न छोड़े सीस संगर की,
लंगर लँगूर उच्च ओज के अतङ्क में।
कहै 'पदमाकर' त्यों हुंकरत फुंकरत,
फैलत फलात फाल बाँधत फलंका में॥
आगे रघुवीर कै समीर के तनै के संग,
तारी दे तड़ाक तड़ातड़ के तमंका में।
संका दै दसानन को हंका दै सुबंका बीर,
डंका दै बिजै को कपि कूदि परयो लंका में॥
(पद्माकर)

धर्मवीर

तृण के समान धन-धाम राज त्यागि कर,
पाल्यो पितु वचन जो जानत जनैया है।
कहै 'पदमाकर' विवेक हो को बानो बीच,
सोची सत्यवीर धीर धीरज धरैया है॥

सुमृति, पुराण, वेद, आगम कह्यौ जो पंथ,
आचरत सोई सुद्ध करम करैया है।
मोद मति मंदिर पुरंदर मही को धन्व,
धर्म धुरन्धर हमारो रघुरैया है॥

(पद्माकर)

(६) भयानक रस का उदाहरण—

लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दुहू दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे जात गात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ तू पराहि, बाप
बाप तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे।
तुलसी, विलोक लोग व्याकुल बिहाल कहैं—
लेहि, दससीस, अब बीस चख चाहि रे॥

(तुलसीदास)

(७) बीभत्स रस का उदाहरण—

सिर पै बैठ्यो काग, आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनँद उर धारत॥
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि कै माँस उचारत।
स्वान अंगुरिन काटि काटि कै खान विचारत॥

बहु चील नोचि लै जात तुच, मोद मढ्यो सब को हियो।
मनु ब्रह्म भोज जजमान कोउ, आजु भिखारिन कहँ दियो॥

(हरिश्चन्द्र)

(८) अद्भुत रस का उदाहरण—

लीन्हों उखारि पहार विसाल, चल्यो तेहि काल विलंब न लायो।
मारुत-नंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत को नभ, लीक लसो कपि यों धुकि धायो॥

(तुलसीदास)

(६) शान्त रस का उदाहरण—

यह बिरियाँ नहिं और की, तू करिया वहि सोधि,
पाहन नाव चढ़ाय जेहि, कीन्हों पार पयोधि ॥

(बिहारी)

'वात्सल्य' को भी बहुत से लोग रस मानते हैं। उसका स्थायी भाव 'स्नेह' है जो पति-पत्नी-प्रेम से भिन्न है। उसका उदाहरण यह है :—

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोई सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं वेग सों आवै तोकों कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोचति मात मौन ह्वै बैठी करि करि सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँद-भामिनि पावै ॥

परिशिष्ट

३

अलंकार

अलंकार का अर्थ है आभूषण। जिस प्रकार सोने चाँदी आदि के अलंकारों से कामिनी के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है उसी प्रकार कविता कामिनी के सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये साहित्य शास्त्र के अलंकारों का उपयोग होता है। कविता शब्दों से बनती है; शब्दों में अर्थ निहित रहता है। जिस प्रकार शब्द में सौन्दर्य हो सकता है, उसी प्रकार अर्थ में भी। अतः अलंकार दो प्रकार के माने गये हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। कभी कभी शब्द और अर्थ दोनों में एकसाथ चमत्कार पाया जाता है; उस दशा में दोनों प्रकार के आभूषणों के एकत्रित होने के कारण उसे उभयालंकार कहा जाता है।

शब्दालंकार—

शब्दालंकार शब्दों के विशेष प्रकार के प्रयोग पर निर्भर रहता है। यदि उपयुक्त शब्द अथवा शब्दों को हटाकर उनके पर्यायवाची शब्द रख दिये जायँ तो रचना निष्प्रभ हो जायगी, अलंकार नष्ट हो जायगा। जैसे 'घन की घनघनाहट औ चमक बीजुरी की' को बदलकर यदि उसी अर्थवाले शब्द 'गरजना बादलों का औ चमक बीजुरी की' भर दिये जायँ तो 'घन' शब्द के अनेक बार प्रयुक्त होने से जो सौन्दर्य उत्पन्न हो सका है वह नष्ट हो जावेगा। इससे प्रतीत होता है कि इस रचना की शोभा का कारण अर्थ नहीं किन्तु शब्द (घन) हैं। अतः यहाँ शब्दालंकार है। इस अलंकार के कई भेद होते हैं, किन्तु मुख्य भेद तीन हैं—(१) अनुप्रास, (२) यमक, और (३) श्लेष।

शब्दालंकार का पहला भेद—अनुप्रास

अनुप्रास अलंकार का विधान तब होता है जब एक या एकाधिक वर्ण बार बार उपयुक्त होता है, जैसे "सिच्छक हौं सिगरे जग को, तिय ताको

कहा अब देति है सिच्छा" में 'सि' कई बार आया है; अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास के भी मुख्य चार भेद होते हैं —छेक, वृत्ति, श्रुति और लाट।

छेकानुप्रास—

जब किसी एक वर्ण या अनेक वर्णों की पुनरावृत्ति एक बार ही होती है तब छेकानुप्रास होता है। यह आवश्यक नहीं कि पुनरावृत्त वर्णों के स्वर भी सम हों।

उदाहरण—

"जो जनती न हितू हरिसों तो काहे को द्वारिकै पेलि पठौती।" इसमें 'ज', 'ह', 'ती' और 'प' की एक एक बार ही पुनरावृत्ति हुई है। (इस प्रकार की आवृत्ति या तो शब्दों के अन्त में होती है या आरम्भ में।)

वृत्त्यनुप्रास—

एक ही अथवा अनेक वर्णों की आवृत्ति कई बार होने से वृत्यनुप्रास होता है। नीचे लिखे उदाहरण में "सोखि सखा सुख ही तरिहौं" में 'स' और 'ख' की कई आवृत्तियाँ हुई हैं।

उदाहरण—

बरबान-सिखीन असेस समुद्रहिं, सोखि सखा सुख ही तरिहौं।

पुनि लंकहिं औटि कलंकित कै, फिर पंक कलंकहिं की भरिहौं॥

श्रुत्यनुप्रास—

इस अलंकार में एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों का प्रयोग होता है। (इसकी पहचान के लिये वर्णों के उच्चारण के स्थान—जैसे कंठ, तालु, जिह्वा, नासा आदि की जानकारी आवश्यक है।)

उदाहरण :—

"तुलसिदास सीदति निस दिन देखत तुम्हारि निठुराई।" इसमें 'त', 'ल', 'स', 'द' और 'न' दन्त्याक्षर हैं। इनके प्रयोग के कारण यहाँ श्रुत्यनुप्रास हुआ।

लाटानुप्रास—

यह अनुप्रास शब्दानुप्रास है, अन्य 'वर्णानुप्रास' अर्थात् 'अक्षरानुप्रास' इसमें एक ही शब्द अथवा शब्दसमूह एक से अधिक बार उसी अर्थ में

किन्तु भिन्न तात्पर्य से आता है, अन्वय की भिन्नता के कारण तात्पर्य में भिन्नता आजाती है।

उदाहरण—

प्रिय निठुर हुए हैं दूर होके दृगों से।
मत निठुर बने तू सामने लोचनों के॥

यहाँ निठुर शब्द दोनों बार एक ही अर्थ में किन्तु पृथक् पृथक् उद्देश से प्रयुक्त हुआ है।

शब्दालंकार का दूसरा भेद—यमक

लाटानुप्रास के समान यमक में भी शब्द अथवा शब्दसमूह दो या अधिक बार प्रयुक्त होता है, किन्तु अन्तर यह है कि लाटानुप्रास में प्रत्येक आवृत्ति में शब्द का वही अर्थ रहता है, किन्तु यमक में अर्थ में विभिन्नता रहती है। इस अलंकार में शब्दांश की भी आवृत्ति हो सकती है, किन्तु उसकी आवृत्ति में कोई अर्थ न होगा।

उदाहरण (१)—

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।

यहाँ 'ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर' की पुनरावृत्ति हुई है किन्तु अर्थ अलग अलग है।

उदाहरण (२)—

अपूर्व थी श्यामलपत्र राशि में
कदंब के पुष्प कदंब की छटा।

यहाँ कदंब शब्द दो अर्थों में आवृत्त हुआ है। पहले का अर्थ है 'कदम्ब का वृक्ष' और दूसरे का अर्थ है 'गुच्छ'।

शब्दालंकार का तीसरा भेद—श्लेष

जहाँ ऐसे शब्द या शब्दों का उपयोग हो, जिसके या जिनके एक से अधिक अर्थ लिये जायँ, वहाँ श्लेष अलङ्कार होता है।

उदाहरण —

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून ।
पानी बिना न ऊबरहिं, मोती मानुस चून ॥

यहाँ पानी के तीन अर्थ लिये गये हैं—(१) आब या कान्ति,
(२) आत्म प्रतिष्ठा,
(३) पानी

श्लेष भी दो प्रकार का होता—अभङ्ग और सभङ्ग ।

अभङ्ग

अभङ्ग श्लेष में शब्द के खंड किये बिना ही एक से अधिक अर्थ निकलते हैं । ऊपर का उदाहरण अभङ्ग श्लेष का है । उसमें पानी के अनेक अर्थ निकालने के लिये उसके टुकड़े नहीं करने पड़ते ।

सभङ्ग

सभङ्ग श्लेष में शब्द के टुकड़े करने पर ही एक से अधिक अर्थ निकलते हैं; जैसे—

बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही । संतत सुरा नीक हित जेही ॥

इस उदाहरण में सुरानीक शब्द के टुकड़े—सुर+अनीक, और सुरा+नीक—करने पर ही एकाधिक-अर्थ ('देव सेना' और 'अच्छी मदिरा') निकलते हैं ।

अर्थालंकार—

जब रचना में चमत्कार अर्थ के कारण होता है तब अर्थालङ्कार होता है । शब्दालङ्कार में शब्दों का परिवर्त्तन करने से अलङ्कार नष्ट हो जाता है किन्तु अर्थालङ्कार में उपयुक्त शब्दों को बदलकर उनके पर्यायवाची शब्द रखने पर भी वही सौन्दर्य बना रहता है । अलङ्कारत्व नष्ट नहीं होता ।

हँसने लगे हरि अहा !
पूर्णेन्दुसा मुख खिल गया ।

इस पद्य में हरि के प्रसन्न मुख की समता पूर्ण चन्द्र से की गई है । यदि 'पूर्णेन्दुसा मुख खिल गया' के स्थान पर 'विधु पूर्णसा मुख खिल गया' कह दिया जाय तो भी चमत्कार बना रहता है; अतः यहाँ शब्द की छटा नहीं, अर्थ की छटा है ।

इस अलङ्कार के अनेक भेद होते हैं, किन्तु यहाँ उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा की ही चर्चा अभीष्ट है।

उपमा (Simile)

यह सादृश्यमूलक अलङ्कार है। अनेक अलङ्कारों की सृष्टि इसी के आधार पर होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है।

समान गुण, रूप, स्वभाव आदि के कारण जब किसी एक वस्तु या व्यक्ति को दूसरे के समान बताया जाता है तब उपमा अलङ्कार होता है। इस अलङ्कार के चार अंग होते हैं :—

(१) उपमेय, (२) उपमान, (३) समान धर्म, (४) सादृश्यसूचक शब्द।

जिस वस्तु या व्यक्ति का निरूपण किया जा रहा हो वह—उपमेय,

जिसके साथ उसकी तुलना की जा रही हो —उपमान,

जिस गुण की समानता दोनों में पाई जाती हो वह —समान धर्म,

और समानता बतानेके लिये जो शब्द उपयुक्त हो वह—सादृश्यसूचक अथवा वाचक शब्द कहा जाता है।

"आपकी चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कीर्ति है।" इस वाक्य में कीर्ति वर्ण्य विषय है—उसकी तुलना की जा रही है; अतः वह उपमेय है; उपमेय 'कीर्त्ति' की तुलना चन्द्रमा से की जा रही है; अतः 'चन्द्रमा' उपमान है। कीर्त्ति और चन्द्रमा दोनों में उज्ज्वलता की समानता है; अतः 'उज्ज्वलता' समान धर्म है. और इस समानता को दर्शित करनेवाले शब्द 'के समान' हैं; अतः इनको वाचक या सादृश्यसूचक शब्द कहेंगे।

कभी कभी उपमा के ये चारों अंग प्रकट रहते हैं और कभी कभी इनमें से कुछ अंग लुप्त रहते हैं; इस कारण उपमा के दो भेद माने जाते हैं— (१) पूर्णोपमा, और (२) लुप्तोपमा।

पूर्णोपमा—जब उपमा के चारों अंग वर्त्तमान हों तो वह पूर्णोपमा कहाती है।

लुप्तोपमा—जब इन अंगों में से कुछ अंग लुप्त रहते हैं तब वह लुप्तोपमा कहाती है।

ऊपर के उदाहरण में चारों अंग उपस्थित हैं; अतः वहाँ पूर्णोपमा अलङ्कार है। उसी वाक्य में से यदि उज्ज्वल शब्द को अलग कर यह कहा

जाय कि आप की कीर्त्ति चन्द्रमा के समान है, तो अर्थ वही रहेगा और चमत्कार भी वही; किन्तु वह पूर्णोपमा न होकर लुप्तोपमा कही जायगी।

रूपक (Metaphor)

उपमा के समान रूपक भी सादृश्यमूलक अलङ्कार है। इस अलङ्कार में उपमेय और उपमान के बीच कोई अन्तर न मानकर एक का दूसरे पर आरोप होता है, अर्थात् दोनों एकरूप हो जाते हैं।

उदाहरण (१)—

राम भगति सुरसरितहिं जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम-समर जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन॥

(रामायण)

यहाँ रामभक्ति को गंगा, कीर्त्ति को सरयू और युद्धश्री की कीर्त्ति को सोननद माना गया है; अतः रूपकालङ्कार है।

उदाहरण (२)—

नैन बैन मन प्रान में, मोहन गुन भरिपूरि।
प्रेम पियूषै छाँड़िकै, कौन समेकै धूरि॥

(नन्ददास कृत भ्रमरगीत)

यहाँ प्रेम को पीयूष (अमृत) मान लिया गया है; दोनों में किसी अन्तर की भावना ही नहीं की गई।

अभेद रूपक—

रूपक दो प्रकार का होता है। एक में उपमेय और उपमान को एक रूप माना जाता है, जैसे ऊपर के उदाहरणों में इस प्रकार के रूपक को 'अभेद रूपक' कहते हैं क्योंकि उपमेय और उपमान में कोई भेद नहीं रखा जाता।

तद्रूप रूपक—

दूसरे प्रकार में उपमेय और उपमान एक होते हुए भी कुछ भेद प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के रूपक को तद्रूप रूपक कहा जाता है। अपर, दूसरा आदि विशेषणों द्वारा उपमेय और उपमान की समानता और भिन्नता दोनों एक साथ सूचित की जाती है; जैसे—"वह दूसरा बृहस्पति है।" इस वाक्य में उसकी और बृहस्पति की अलग अलग स्थिति

भी प्रतीत होती है और दोनों की पूर्ण समता भी। "वह इतना पंडित है मानों बृहस्पति हो" न कहकर "वह दूसरा बृहस्पति है" कह दिया जाता है।

नोटः—रूपक के इन भेदों के और भी उपभेद होते हैं, जिनका विवेचन यहाँ अनावश्यक है।

उत्प्रेक्षा (Poetical Fancy)

उत्प्रेक्षा का अर्थ संभावना है। इस अलङ्कार में उपमेय और उपमान में भेद जानते हुए भी, "मानो, जैसे, मनहु, मानहु" आदि का योग करके उपमेय में उपमान की प्रतीति की जाती है। अप्रत्यक्ष (उपमान) की संभावना प्रत्यक्ष (उपमेय) में करली जाती है।

मन मलीन तनु सुंदर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे॥
(रामायण)

यहाँ लक्ष्मण के सुन्दर शरीर और मलिन मन को देखकर कवि विषरस-भरे स्वर्ण कलश की उत्प्रेक्षा करता है। इसी प्रकार नीचे लिखे पद्य में लहरों के कारण चन्द्रमा के लहराते हुए प्रतिविम्ब को देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि प्रेम के कारण वह जमुना-जल में किलोल कर रहा है।

कबहुँ होत सतचंद, कबहुँ प्रगटत, दुरि भाजत,
पवन गवन बस बिंबरूप जल में बहु साजत।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै,
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै।
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती,
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज रमनी जल आवती॥

उत्प्रेक्षा के भेद—

यह अलङ्कार तीन प्रकार का होता है—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा; परन्तु इनका विवेचन भी यहाँ अनावश्यक होने से नहीं किया जा रहा है।

अन्योक्ति

इस अलङ्कार में जिससे कुछ कहना है सीधे उससे न कह कर किसी दूसरे का आश्रय लिया जाता है जो यथार्थ व्यक्ति से समता रखता हो। वर्ण्य विषय का अप्रस्तुत विषय के द्वारा स्पष्टीकरण कराया जाता है।

उदाहरण—

रम्भा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुम से केते ह्वै गये; अरु ह्वै हैं इहि खेत॥

(दीनदयाल)

यहाँ रम्भा (केले) का आश्रय लेकर थोड़े में बौरा जानेवालों के प्रति कहा गया है; अतः अन्य के सहारे अन्य का वर्णन होने के कारण यहाँ अन्योक्ति अलंकार है। यहाँ बात तो कही गई है 'रम्भा' पर, किन्तु 'रम्भा' पर कुछ कहना कवि का उद्देश्य नहीं है। वह रम्भा की आड़ में थोड़े में बौरा जानेवाले से यथार्थ में कह रहा है।

व्याजस्तुति

जब ऐसी बात कही जाय जो निन्दा सी प्रतीत होते हुए भी वास्तव में प्रशंसा हो तब व्याजस्तुति अलंकार होता है।

भसम जटा विष अहि सहित, गंग कियो तें मोहि।
भोगी तें जोगी कियों, कहा कहौं अब तोहि॥

यहाँ यद्यपि भस्म, जटा, विष, सर्प आदि की चर्चा करके गंगा की निन्दा-सी प्रतीत होती है, किन्तु है यह उनकी स्तुति।

व्याजनिन्दा

इसमें की तो जाती है निन्दा, किन्तु मालूम ऐसा पड़ता है कि प्रशंसा की गई है।

सेमर तेरौ भाग्य यह, कहा सराह्यो जाय।
पक्षी करि फल आश जो, तुहि सेवत नित आय॥

पक्षियों का सेमर पर फल की आशा से एकत्रित होना देखकर कवि कहता है कि तेरे भाग्य को क्या कहें, पक्षी तेरी सेवा करते हैं। यह प्रशंसा जान पड़ती है, किन्तु समझनेवाले कह सकेंगे कि क्या इसमें प्रशंसा अभीष्ट है? बेचारे पक्षी फलाशा से जाते तो हैं किन्तु निराश होजाते हैं; इतने बड़े सेमर के वृक्ष के भाग्य को क्या कहा जाय!

परिशिष्ट

४

छन्द

प्रायः प्रत्येक भाषा में दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—एक तो गद्य रचना, जो साधारण बोलचाल के काम आती है और जिसमें व्याकरण के नियमों के अनुसार शब्दों के रूप और उनके स्थान नियत रहते हैं; और दूसरी पद्य रचना अर्थात् कविता, जिसका सम्बन्ध, रागात्मक होने के कारण, संगीत से है। इस रचना में वर्णों के उच्चारण में जो समय लगता है उसका, अथवा वर्णों की संख्या का अथवा दोनों का हिसाब कर नियमित संख्या पर विराम की योजना करनी पड़ती है ताकि पाठ स्वरबद्ध हो और उस कारण उसमें मधुरता आजावे। इसी रचना का नाम 'छन्द' है और 'वृत्त' भी इसे ही कहते हैं।

मात्रा—

जिस प्रकार किसी वस्तु की लम्बाई गज, फुट, इंच से, और भार (वजन) मन, सेर, छटाँक आदि से नापने की प्रथा है, उसी प्रकार वर्णों के उच्चारण में जो समय लगता है उसका मान मात्राओं के द्वारा किया जाता है। अतः मात्राएँ वर्णों के उच्चारण के समय को नापने के 'बाट' हैं।

वर्ण—

वर्ण का अर्थ यहाँ स्वर और स्वरयुक्त व्यंजन है; क्योंकि स्वरहीन व्यंजन का स्वतंत्र उच्चारण ही नहीं होता, अतः उसके उच्चारण में कोई समय भी नहीं खर्च होता और, इस कारण, उसकी कोई मात्रा भी नहीं मानी जाती।

उच्चारण-भेद से स्वर और स्वरयुक्त व्यंजन दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व और दीर्घ, अथवा, लघु और गुरु; यथा—

ह्रस्वः—अ, कि, उ, ऋ, कृ।

दीर्घः—आ, की, सू, हे, कृ, की।

ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगता है उसका मान एक मात्रा, और दीर्घ वर्ण के उच्चारण काल का मान दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

'अमर' में तीनों वर्ण ह्रस्व हैं, अतः प्रत्येक वर्ण की एक मात्रा होगी। 'ओज' में 'ओ' का दीर्घ उच्चारण होता है, अतः 'ओ' की दो मात्राएँ और 'ज' की एक मात्रा होगी। इसी प्रकार 'एक' में 'ए' की दो मात्राएँ और 'क' की एक मात्रा होगी।

संयुक्ताक्षर के पहले का ह्रस्व वर्ण भी दीर्घ माना जाता है, क्योंकि उसके उच्चारण में अधिक समय लगता है। जैसे पत्थर में 'प' ह्रस्व है परन्तु 'त्थ' के आदि में रहने और 'त्' के कारण उसका उच्चारण काल बढ़ जाने से वह 'प' दीर्घ माना जाता है और उसकी दो मात्राएँ होती हैं। जब संयुक्त वर्ण के आदि ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में स्वरहीन व्यंजन के कारण अपेक्षाकृत अधिक समय नहीं लगता तब वह आदि ह्रस्व वर्ण ह्रस्व ही माना जाता है, दीर्घ नहीं; जैसे—'कन्हैया' में 'क'।

अनुस्वार और विसर्गवाले वर्ण दीर्घ माने जाते हैं; परन्तु जब अनुस्वारयुक्त ह्रस्व वर्ण का उच्चारण इस प्रकार किया जावे कि उसमें अर्द्धचन्द्रविन्दु ँ वाले ह्रस्व वर्ण का सा समय ही लगे, तो वह सानुस्वार ह्रस्व वर्ण दीर्घ न माना जायगा; जैसे 'हंसना' में 'हं' का उच्चारण 'हँ' होने के कारण वह ह्रस्व ही गिना जाता है। इस प्रकार दबाकर पढ़े जाने के कारण दीर्घ वर्ण भी ह्रस्व माने जाते हैं, जैसे नीचे लिखे पद्य में 'नो' और 'की'—

हे करतार बिनै सुनो दास की लोकन को अवतार करयो जनि।

ध्यान रहे कि गणना उच्चारण काल की होती है न कि वर्ण के रूप की; अतः जब ह्रस्व वर्ण का उच्चारण दीर्घ के समान होता है तब वह ह्रस्व वर्ण दीर्घ माना जाता है और इसी प्रकार जब दीर्घ वर्ण का उच्चारण ह्रस्व के समान होता है तब वह ह्रस्व ही माना जाता है।

ह्रस्व वर्ण का चिह्न (।) और दीर्घ का (ऽ) माना जाता है।

छन्द भेद—

भिन्न भिन्न प्रकार से गणना होने के कारण 'छन्द' के तीन भेद होते हैं—मात्रिक, वर्णिक, और मुक्तक।

मात्रिक छन्द—

मात्रिक छन्दों में मात्राओं की ही गणना होती है; वर्णिक छन्दों के अनुसार वर्णों के लघु गुरु (ह्रस्व, दीर्घ) का क्रम नियत नहीं रहता। कभी

कभी पाठ प्रवाह (गति) की सरलता बनाये रखने के लिये, कहीं कहीं लघु गुरु का क्रम निर्धारित करना पड़ता है। चौपाई, दोहा, सोरठा आदि मात्रिक छन्द हैं।

उदाहरण—

मंगल सगुन होंहिं सब काहू। फरकहिं सुखद विलोचन बाहू॥

इसमें प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ हैं। वर्णों की संख्या बराबर नहीं है, अतः यह मात्रिक छन्द है।

वर्णिक छन्द—

इस छन्द में वर्णों की संख्या और मात्राओं (लघु गुरु क्रम) दोनों का ही विचार होता है। मात्रिक छन्दों में मात्राओं की संख्या का विचार किया जाता है, परन्तु वर्णिक में संख्या का नहीं, केवल लघु गुरु वर्णों का क्रम निश्चित करने के लिये मात्राओं का विचार किया जाता है। इस छन्द में वर्णों की संख्या और उनके लघुत्व और गुरुत्व का हिसाब तीन-तीन वर्णों के समूहों अर्थात् गणों द्वारा किया जाता है।

उदाहरण—

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै, परन्तु पूर्वा पर सोच लीजै।

इसमें 'बड़ाकि', 'छोटाकु', 'छकाम' ऐसे तीन तीन वर्णों के गण बाँट लिये गये हैं; जिस क्रम से ह्रस्व और दीर्घ तथा जितने वर्ण पहले चरण में हैं उसी क्रम से और उतने ही दूसरे में; अतः यह वर्णिक छंद है। इस छंद को वर्ण वृत्त अथवा गण वृत्त भी कहते हैं।

सवैया, तोटक, स्रग्धरा, मालिनी, शिखरिणी आदि वर्णिक छन्द हैं।

मुक्तक—

मुक्तक छन्द में केवल वर्णों की संख्या निश्चित रहती है। वर्णों के लघु गुरु होने का क्रम निश्चित नहीं रहता।

उदाहरण—

बोल्यौ द्वारपाल सों सुदामा नाम पाँड़े सुनि,
छाँड़े राजकाज ऐसी जी की गति जानै को।
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाय,
भेंटे लपटाय ऐसे और सुख मानै को॥

इसमें प्रत्येक चरण में १६ और १५ वर्णों पर विराम हैं, यही समानता है और कोई नहीं। अतः यह मुक्तक छंद है।

मनहर, घनाक्षरी आदि मुक्तक छंद होते हैं।

गण—

तीन वर्णों के समूह को 'गण' कहते हैं; ये आठ होते हैं :—

नाम	रूप	सांकेतिक नाम	रूपव्याख्या	उदाहरण
१. मगण—	ऽ ऽ ऽ	'मां'	तीनों वर्ण गुरु होते हैं।	आता था ऽ ऽ ऽ
२. नगण—	। । ।	'न'	तीनों वर्ण लघु होते हैं।	अमल । । ।
३. भगण—	ऽ । ।	'भ'	पहला वर्ण गुरु, शेष दो लघु होते हैं।	आतप ऽ । ।
४. यगण—	। ऽ ऽ	'य'	पहला लघु, शेष दो —दीर्घ।	प्रहारी । ऽ ऽ
५. जगण—	। ऽ ।	'ज'	आदि और अंत लघु, मध्य गुरु	महान । ऽ ।
६. तगण—	ऽ ऽ ।	'त'	आदि के दो गुरु, अंतिम लघु	आगार ऽ ऽ ।
७. सगण—	। । ऽ	'स'	आदि के दो लघु, अंतिम गुरु	सरयू । । ऽ
८. रगण—	ऽ । ऽ	'र'	आदि और अंत के गुरु, मध्य लघु	कामना ऽ । ऽ

गणों को याद रखने के लिये 'यमाताराजभानसलगं' यह सूत्र याद कर लेना चाहिये। 'य' से यगण, 'मा' से मगण 'ता' से तगण, 'रा' से रगण, 'ज' से जगण, 'भा' से भगण, 'न' से नगण और 'स' से सगण समझना चाहिये। जिस गण का रूप निकालना हो उसका सांकेतिक नाम इस गण से निकालकर उसमें उसके आगे के दो वर्ण और जोड़ देने से लघु गुरु का क्रम निकल आवेगा। यथा:—

सगण का रूप ज्ञात करने के लिये 'यमाताराजभानसलगं' से सांकेतिक नाम 'स' लेकर उसमें उसके आगे के दो वर्ण 'लगं' जोड़ दिये, तो रूप

'सलगं हुआ। स और ल ह्रस्व हैं, अतः उनकी एक एक मात्रा हुई, और 'गं' अनुस्वार युक्त होने के कारण दीर्घ है अतः उसकी दो मात्राएँ हुईं। इस प्रकार सलगं की ।। ऽ मात्राएँ हुईं। यही सगण का रूप है।

चरण या पाद—

पद्य के चतुर्थांश को चरण या पाद कहते हैं। अधिकतर चार चरणों के ही छंद हुआ करते हैं, किन्तु कोई कोई छंद छः चरणों के भी होते हैं; जैसे छप्पय, कुंडलिया आदि।

गति—

छन्द का सम्बन्ध संगीत से होने के कारण उसमें वर्णों की योजना इस प्रकार की जाती है कि मधुर पाठ प्रवाह हो सके। इसी प्रवाह को गति कहते हैं।

यति—

छन्द के पाठ में नियमित स्थानों पर कुछ विराम की आवश्यकता पड़ती है, ताकि भाव को विराम मिले जिससे अर्थ स्पष्ट हो सके, और पाठ प्रवाह भी सरल रहे। इसी विराम को यति कहते हैं और उसके स्थान को यति का स्थान।

तुक—

प्रायः यह प्रयत्न किया जाता है कि छन्द के चरणान्त समान ध्वनि-वाले और समान वर्णवाले हों ताकि छन्द का पाठ मधुर हो। इस प्रकार समध्वनि और समवर्ण चरणान्तवाली रचना को तुक कहते हैं। इसके द्वारा छन्दों को वाह्य सौन्दर्य की प्राप्ति होती है—अतः इसकी गणना शब्दालंकारों के अंतर्गत भी अन्त्यानुप्रास के नाम से होती है।

छन्दों के सम विषमादि भेद—

चारणों में मात्राओं अथवा वर्णों की संख्या, क्रम आदि की समानता और असमानता के विचार से प्रत्येक प्रकार के छन्द के तीन तीन उपभेद माने गये हैं।

जिस छन्द के चारों चरण समान मात्रा अथवा समान वर्ण संख्या एवं लघु गुरु क्रम वाले होते हैं उन्हें सम; जिनके पहिले-तीसरे और

दूसरे-चौथे चरणों में उपर्युक्त समानता होती है उन्हें अर्द्धसम, और जिनमें कहीं भी समानता नहीं होती उन्हें विषम कहते हैं।

चौपाई, गीतिका, सार, सरसी, रोला आदि मात्रिक सम छंद हैं, दोहा और सोरठा मात्रिक अर्द्धसम; और कुंडलिया और छप्पय मात्रिक विषम छन्द हैं।

वर्णिक छन्द अधिकतर सम ही होते हैं। मालिनी, शिखरिणी, तोटक, स्रग्धरा मन्दाक्रान्ता और सवैया समवर्णिक हैं।

मात्रिक सम छन्दों के मुख्य मुख्य भेद—

(१) चौपाई—

प्रत्येक चरण सोलह मात्राओं का होता है। अन्त में जगण (। ऽ ।) और तगण (ऽ ऽ ।) का होना वर्जित है, यदि अन्त में दो गुरु (ऽ ऽ) हों तो उत्तम।

उदाहरण—

मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं।
सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥

(२) गीतिका—

प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं। १४ और १२ मात्राओं पर यति (विराम) होती है। अन्तिम दो वर्ण क्रमशः लघु और गुरु होते हैं।

उदाहरण—

उत्तरा के धन रहो तुम उत्तरा के पास ही।

(३) सार—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। अन्तिम दो वर्ण गुरु होते हैं।

उदाहरण—

किसको किसने कहते देखा अपनी आप बड़ाई।
किसको किसने करते देखा अपनी आप खुटाई॥

(४) सरसी—

इस छन्द में प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ होती हैं; सोलह और ग्यारह मात्राओं पर विराम होता है। अन्तिम दो मात्राएँ क्रमशः गुरु और लघु होती हैं।

उदाहरण—

जड़ चेतन यह बता रहे हैं तेरी बात अनूप ।

(५) रोला—

इस छन्द का प्रत्येक चरण २४ मात्राओं का होता है। ११ और १३ मात्राओं पर विराम होता है और अन्तिम दो वर्ण कभी लघु और कभी गुरु होते हैं।

उदाहरण—

जेठमास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदाई ।
तिहि दिन गंगा उमंग भरी भूतल पर आई ॥

× × × ×
× × × ×

मात्रिक अर्द्धसम—

(१) दोहा—

इस छन्द के विषम (पहले और तीसरे) चरणों में तेरह और सम (दूसरे और चौथे) चरणों में ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण (१)—

पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ ।
गएउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ ॥
(तुलसी)

(यहाँ 'ए' और 'हे' उच्चारणानुकूल लघु हैं।)

उदाहरण (२)—

सीसमुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल ।
इहि बानक मो मन बसहु सदा बिहारीलाल ॥
(बिहारी)

(ए का उच्चारण ह्रस्व सा होने के कारण उसकी एक ही मात्रा होगी।)

(२) सोरठा—

यह छंद दोहे का उलटा होता है। विषम चरणों में ग्यारह और सम में तेरह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

कर मुरली उरमाल, सीसमुकुट कटि काछनी ।
सदा बिहारीलाल, एहि बानक मो मन बसहु ॥

मात्रिक विषम छंद—

कुंडलिया—

कुंडलिया में दोहा और रोला का मेल रहता है। आदि में एक दोहा लिखकर एक रोला जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार यह छंद छः पदों का होता है। प्रत्येक पाद में २४ मात्राएँ होती हैं। दोहे का अंतिम चरण रोला के आदि में रखा जाता है। इस छंद के आदि में जो शब्द होता है वही अन्त में भी होता है, जिस प्रकार नीचे के उदाहरण में "नाहीं" आया है।

उदाहरण—

नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार ।
यह बहार दिन चार की बहुरि कँटीली डार ॥ (दोहा)
बहुरि कँटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये । ↓
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये ॥ +
बरनै दीनदयाल, फूल जौलौं तो माहीं । ↑
रहे घेरि चहुँ फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं ॥ (रोला)

छप्पय (षट्पद)—

यह छंद रोला और उल्लाला के मेल से बनता है। पहले रोला के चार पद लिखकर बाद में उल्लाला जोड़ दिया जाता है। [उल्लाला में पहले और तीसरे चरण में पंद्रह, और दूसरे और चौथे चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं।]

उदाहरण—

गाधिराज को पुत्र साधि सब मित्र शत्रु बल ।
दान कृपान विधान वश्य कीन्हों भुव मंडल । (रोला)
कै मन अपने हाथ जीति जग इन्द्रियगन अति । ↓
तपबल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति । +
तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अतीतागतनि गुनि । ↑
तहँ अद्भुत गति पगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि ॥ (उल्लाला)
(रामचन्द्रिका)

वर्णिक सम छन्द

(१) मालिनी—

इस छंद का स्वरूप है 'न न म य य'। आठवें और सातवें वर्णों पर क्रमशः विराम होता है।

'न न म य य' का अर्थ है नगण नगण मगण यगण यगण।

।।। ।।।ऽऽऽ।ऽऽ ।ऽऽ

उदाहरण—

विपुल लसित लीला धाम आमोद प्याले।
सकल कलित क्रीड़ा और कला में निराले॥

× × × × × ×

(२) शिखरिणी—

इसका स्वरूप 'य म न स भ ल गं' होता है, अर्थात् यगण, मगण, नगण, सगण और भगण के बाद एक लघु और एक गुरु वर्ण होता है। छठवें और ग्यारहवें वर्ण पर विराम का क्रम रहता है।

उदाहरण—

अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से।
बना जो देती थी बहुगुणमयी भू विपिन की॥

× × × × × ×

(३) तोटक—

इस छंद में चार सगण होते हैं।

उदाहरण—

नर नारि भली सुरनारि सबै।
तिन कोउ परै पहिचान अबै॥

(४) स्रग्धरा—

इस छंद का स्वरूप 'म र भ न य य य' है।

उदाहरण—

नाना फूलों फलों से अनुपम जग की वाटिका है विचित्रा ।

(५) मन्दाक्रान्ता—

इसका स्वरूप 'म भ न त त ग ग' है । चार, छः और सात अक्षरों पर यति होती है ।

उदाहरण—

मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं ?
कोई चिन्ता मलिन उनको तो नहीं है बनाती?

(६) सवैया—

इसके कई भेद होते हैं । २२ से लेकर २६ तक इसके प्रकारों में वर्ण-संख्या रहती है । मत्तगयंद, मदिरा, किरीट, दुर्मिल, अरसात, चन्द्रकला वा सुन्दरी, मकरन्द, लवंगलता, चकोर आदि कुछ मुख्य-मुख्य के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

[१] मत्तगयंद अथवा मालती (सवैया)

सात भगण और अन्त में दो गुरु वर्णों का मालती छन्द होता है ।

उदाहरण—

दान सयाननि के कल्पद्रुम टूटत ज्यों ऋण ईश के माँगे ।
सूखत सागर से सुख केशव ज्यों दुख श्रीहरि के अनुरागे ॥

[२] मदिरा (सवैया)

इस छन्द में सात भगण और अन्त में एक गुरु होता है ।

उदाहरण—

तोरि शरासन शंकर को शुभ सीय स्वयंवर माँझबरी ।
तासें बढ्यो अभिमान महामन मेरी यो नेक न शंक करी ॥

[३] किरीट (सवैया)

इस छन्द में आठ भगण होते हैं।

उदाहरण—

हे करतार बिनै सुनो दास की लोकन को अवतार करयो जनि।

[४] दुर्मिल (सवैया)

इस छन्द में आठ सगण होते हैं।

उदाहरण—

पद कंजजि मंजु बनी पनही धनुहीं सर पंकज पानि लिये।

[५] अरसात (सवैया)

इस छन्द में सात भगण होते हैं और अन्त में एक रगण।

उदाहरण—

जा थल कीन्ह बिहार अनेकन ता थल काँकरि बैठि चुन्यो करैं।

[६] चंद्रकला अथवा सुन्दरी सवैया

इस छन्द में आठ सगण होते हैं अन्त में एक गुरु।

उदाहरण—

दिन ही दिन बाढ़त जाय हिये जरि जाय समूल सुओषधि खैहै।

[७] मकरन्द अथवा वाम (सवैया)

इसमें सात जगण होते हैं और एक यगण।

उदाहरण—

विलोकि सिरोरुह सेत समेत तनोरुह कोविद यों गुण गायो।

[८] लवंगलता (सवैया)

इस छन्द का रूप आठ जगण और एक लघु होता है।

उदाहरण—

चहीं प्रति मंदिर सोभ बढ़ी तरुणी अवलोकन को रघुनंदन ।

[६] चकोर (सवैया)

इस छन्द में सात भगण और अन्त में दो वर्ण क्रमशः गुरु और लघु होते हैं ।

उदाहरण—

वेद पुरान बिहाइ सुपन्थ कुमारग कोटि कुचाल चली है* ।
काल कराल नृपाल कृपालन राज समाज बड़ोई* छली* ॥

(इस उदाहरण में 'है' और 'ई' ह्रस्व के समान पढ़े जायेंगे ।)

चन्द

(पृष्ठ १)

सूचना:—इनकी कविता क्लिष्ट है; अर्थ करने के लिये कहीं कहीं तो बड़ी खींचतान करनी पड़ती है, जिससे कवि के इष्ट अर्थ तक पहुँच सकना संदिग्ध ही रहता है।

(सरस्वती की स्तुति)

(१)

मुक्ताहार=मोतियों की माला। विहार=क्रीड़ा। मुक्ताहार-विहार= (जिसके गले में) मोतियों की माला क्रीड़ा करती है। सार=श्रेष्ठ। सुबुधा=अच्छी तरह जाननेवाली। अबुधा (अबुधा) बुधा गोपनी=मूर्ख और विद्वान् दोनों की रक्षा करनेवाली (दोनों ही सरस्वती की शरण में जा रक्षा पाते हैं)। गोपनी=रक्षा करनेवाली।

सेतं (श्वेत) चीर (वस्त्र)=श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली। समीर (वायु) नीर (जल) गहिरा (गंभीर, अगाध, अथाह)=वायु और जल के समान गंभीर; अथाह। दच्छिजा=लक्ष्मी (के समान)। हंसा रसा आसिनी=हंस और जिह्वा के आसन पर बैठनेवाली। चिहुरार=केश। जघना=जंघा।

(जैतराव और खुरासानखाँ का तुमुल युद्ध)

(पृष्ठ २)

(२)

धूनत=धुनने लगा। धाह=चिल्लाकर रोने का शब्द। सत्थिय=साथी। लुत्थ=लोथ। वत्थन=वस्त्र। खुरसान=खुरासानखाँ। जैत=जैतराव। अब्बू धनिय=आबू का धनिक (जैतराव के लिये आया है)। हत्थ=हाथ (में)। चन्द्रमा महासर=चन्द्र के समान महा बाण। सार=तलवार (यह डिंगल भाषा का शब्द है)। बजायौ=प्रहार किया। पज्जून=पज्जन राय।

विद्यापति

(पृष्ठ ३)

(देवी वन्दना)

असुर भयाउनि=राक्षसों को भयकारिणी । दिअओ=दीजिये । गोसाउनि=गोस्वामिनी । तुअ=आपका । सवासन=(शव+आसन) मृतक पर आसन । कत ओक=कितने ही; अनेक । मेलल=रक्खा । कैल= किया । कूढ़ा कैल=चूर चूर कर दिया । जलद-जोग फुल कोका=बादल में कमल फूले हों । पाँड़रि=एक प्रकार का लाल रंग का फूल । लिधुर= रुधिर । फोका=बुद्बुद् । काता=कटार; खड्ग ।

(स्फुट पद)

(१)

एत=इतना; इतने । किअलागि=किस लिये । कैलहु=किया । कथिला कएलि=किस लिए किया । धिया=कन्या । एहो=ये । होएता= होगा । नहिं थिकइन=नहीं हैं । नहिं छइन=नहीं है । बइसति किकर लगजाय=किसके पास जाकर बैठेगी ।

(पृष्ठ ४)

बसहा चरौती=बैल चरावेगी । बैसहु न पौती=बैठने भी न पावेगी । (आराम भी न कर सकेगी) । मनाइनि=मेनका; पार्वती की माता । यह शब्द 'मेनका' से बना है ।

(२)

रटल=गये । केओ=कोई भी । कुसल-सनेस=कुशल सन्देश; कुशल-वार्ता । जिवथु=जियें । बसथु=बसें; रहें । हुनक=उनका । विहि=विधि । तेजलनि=त्याग दिया । पुरबिल=पुरानी । पिरीत (प्रीति)=कविता में भी इसे 'प्रीति' ही पढ़ना चाहिये । बेदन=वेदना; पीड़ा । आनक=दूसरे का । नाह=नाथ । कि करत=क्या करें या क्या कर सकते हैं ।

जायसी

(पृष्ठ ५)

(१)

भेस=वेष । परी जग कारी=जग में अंधकार छागया । गोइ=गोय; गेंद । जोरा= जोड़ा; प्रतिद्वन्द्वी । चौगान= गेंद खेलने का डंडा ।

(२)

अगमन होइ=आगे बढ़कर । समदि=स्नेह-पूर्वक मिलकर । गाजा= गरजा । पूरुष=योद्धा । मसि= अंधकार ।

(३)

हाँका=ललकारा ।

(पृष्ठ ६)

आदी=आदि का; जन्म का । बादी=शत्रु । हरद्वानी खड्ग= हरद्वान की तलवार (हरद्वान की तलवार प्रसिद्ध थी) । बीजु कै बानी= बिजली की चमक । गाजा=(गाज) वज्र । इन्दू=इंद्र । आइ न बाज=आकर कहीं पड़ने न लग जाय । पहिल उठौनी=पहला धावा । स्यो=सहित । कूँड=लड़ाई में सिर के बचाव के लिये लोहे की टोपी । तुरय=घोड़े ।

(४)

बगमेल=घुड़सवारों का घोड़े से घोड़ा जुटाकर धावा । धर=कबंध । रुहिर=रुधिर । भोगी=आराम-तलब । भारत=युद्ध । निबरे=काम आये ।

(५)

(पृष्ठ ७)

निनारे=अलग । भभूका=लाल, जैसे अंगार । बेगि करहु एहि हाथ= इसे जल्दी वश में करो; पकड़ो ।

(६)

बोलै बाँहाँ=बोलती बाँह है (बाँह फड़कती है) । मुए पाछ कोई घिसियावा=मरने पर चाहे जो घसीटता रहे । मसि=कलंक । रुहिर न

धोवों=रक्त से नहीं धोता, अथवा न धोऊँ। रात=लाल [रत्नसेन के बन्दी होने का जो कलंक मुझ पर है वह बिना रक्तपात किये न छूटेगा।]

(७)

साँग=छोटा भाला। काढ़ेसि=निकाला। हुमकि=हुमक कर; ज़ोर से। रावन राव=राजा रावण, जिसके सिर कटते जाते थे, लेकिन वह लड़ता ही जाता था। तुरय=घोड़ा।

(८)

कहेसि·····भरना=उसने कहा कि अब तो अन्त (मरना) है ही, ज़मीन पर सोना ही पड़ेगा; मरने पर सिर में खेह (धूल) भरेगी ही। सरजा=अलाउद्दीन का एक सैनिक सरदार। सारदूल (शार्दूल)=बाघ; सिंह। निहाऊ=निहाई। जनु परा निहाऊ=मानो निहाई पर गिरा हो (साँग को नहीं काट सका)। डाँड़ा=तलवार। बाजा=टकराया। उठी····खाँड़ा=तलवारों के टकराते ही चिनगारियाँ उठीं।

(पृष्ठ ८)

गाजा=गाज; बिजली। ओहि=उसको। ओड़न=ढाल। कूँड़=लड़ाई के समय पहनने की ऊँची टोपी।

सदूर=शार्दूल। ठाँठर=ठठरी। स्यो=रहित। सरग=स्वर्ग। पतारू=पाताल। दीठि (दृष्टि)=नज़र। फिरा संसारू=(संसार लौट गया) अंधकार छा गया। परलय=प्रलय। नियराना=समीप आगया। खेत=लड़ाई का मैदान। पान=बीड़ा [वीरगति-प्राप्त योद्धाओं का देवताओं द्वारा सन्मान किया जाता है।]

कबीर

(साखी)

(पृष्ठ ९)

साहेब मेरा·····

साहेब (साहब; अरबी=साहिब)=मालिक; स्वामी; ईश्वर। खरा=सच्चा; असली।

साहेब सा समरथ·····

गरुआ (सं० गुरु)=(भारी; वज़नी) बड़ा; प्रभावशाली; शक्तिशाली; सारवान् ।

सभी रसायन·····

रसायन=(१) जरा और व्याधि-नाशक औषध; (२) एक धातु को दूसरी धातु में बदल देने की शक्ति रखनेवाला योग । कंचन=(१) नीरोग; स्वस्थ; (२) सोना ।

साधू ऐसा·····

सूप=सूपा (अनाज फटकने का बाँस का एक बरतन) ।

(पृष्ठ १०)

जब मैं था·····

मैं=अहंभाव; अभिमान ।

नैनों अंतर·····

झाँपि लेंव=ढक लूँ; छिपा लूँ ।

पपिहा का पन·····

पपीहा (चातक) के विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह केवल वर्षा की बूँदों का ही पान करता है; प्यासा रह जाता है किन्तु नदी, सरोवर आदि का जल नहीं पीता । कोई कोई तो यह कहते हैं कि केवल उसी वर्षा की बूँदों का पान करता है जो स्वाति नक्षत्र में होती है । पन=प्रण ।

समर सुवना·····

सुवना=तोता । ढेंढी=डोडा(फल) ।

दव का दाही· · ·

दव=(१) वन; (२) दावाग्नि । दाही=(जलाने या भस्म करनेवाला) यहाँ 'जली हुई' अर्थ निकलता है ।

(पृष्ठ ११)

(पद)

अरे इन दोउन राह न पाई ।

पीर=मुसलमानों के धर्मगुरु । औलिया=पहुँचे हुए फ़क़ीर । ख़ाला (अरबी शब्द)=मौसी; माता की बहिन ।

करम गति टारे नाहिं टरी ।

सोध के (शोध के)=अच्छी तरह विचार कर; खोजकर । पारधि (पारधी)=शिकारी; अहेरी ।

नीच हाथ हरिचंद बिकाने = राजा हरिश्चन्द्र के डोम के हाथों बिकने की कथा प्रसिद्ध है ।

बलि पाताल धारी=राजा बलि से भगवान् का वामन रूप धारण कर तीन पैर पृथ्वी माँगना, और फिर बलि को पाताल भेजना प्रसिद्ध है ।

नृग गिरगिट जोनि परी=राजा नृग बड़े दानी थे । एक बार गोदान करते समय भूल से उन्होंने किसी ब्राह्मण की गाय, जो उनकी गौवों के झुण्ड में आ मिली थी, किसी दूसरे ब्राह्मण को देदी । उस भूल के कारण उन्हें परलोकवास होने पर सहस्र वर्षों तक गिरगिट होकर एक कुएँ में रहना पड़ा । अन्त में श्रीकृष्ण ने उनका उद्धार किया ।

जिनके आप सीरथी=जिनके सारथी स्वयं कृष्ण थे ।

सूरदास

(बाल-कृष्ण)

(१)

कानि=लोक-लज्जा; संकोच; लिहाज़ । भानि=तोड़-फोड़कर । ढोटा=बेटा ।

(२)

तरनि=सूर्य । मुकुलित=प्रफुल्लित । भृङ्गमाल=भौरों का समूह । पुहुप=पुष्प । जैबे=जाने के लिये ।

(३)

वारी हौं=निछावर हूँ। बलाइ=आपत्ति। लटकन=लटों में गुहने के घुँघरू। मसिबिंदुका=काला टीका; अंजन; दिठौना। कलबल करि बोलनि=अस्पष्ट कुछ कहना। बीजु=बिजली।

(४)

हौं=मैं। दोहिनी=वह बरतन जिसमें दूध दुहा जाता है। नोई=लोमना; वह रस्सी जिससे दुहते समय बछड़ा गाय के पैर से बाँधा जाता है। पनैया=रस्सी, जिसे गले में बाँध कर गाय को खूँटे से बाँधते हैं।

(५)

पचिहारी=परेशान होगई; थक गई। बकस्यौं=बचाती गई; छोड़ती गई। घात=शठता।

(६)

बोरी (बौरी)=बावली; पगली। झुकति=क्रुद्ध होती है; बुरा मानती है। डोलत=फिरता है।

(७)

साँटी=छड़ी। ठाटी=रची। बदन पसारि=मुख खोल कर। दिखाय आपने नाटक की परिपाटी=अपनी सृष्टि-रचना का खेल दिखाया। भ्रम-जामिनि=(भ्रम-यामिनी)=भ्रम-रूपी निशा।

(८)

टुक=थोड़ा; ज़रासा। तीछन=तीखा। अँकोरे लगाय लिये=गोद में ले लिया। निहोरे कीन्हें=ख़ुशामद की।

(रूप-माधुरी)

(१)

छिन छिन माँहि ··अंग। मिलाइये "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

(२)

बिबि=दो।

(३)

करष्यौ=आकर्षित कर लिया।

मुरली-माधुरी

(१)

ढरी=आसक्त होगई। जुगभरि जात घरी=एक घड़ी भी युग के समान बीतती है। आरज-पथ (आर्य-पथ)=भलमंसी की चाल। चाँड़ सरना=काम निकालना।

(२)

बिथकी=रुक गई; स्थगति होगई।

(भ्रमर-गीत)

(१)

अधारि=ठौकी; काठ के डंडे में लगा हुआ काठ का पीढ़ा, जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं।

(२)

हुतौ=था।

(४)

जोहि जोहि=देखते देखते।

(७)

हंससुता यमुना। कगरी=किनारा।

(सूर-विनय)

(१)

मनसा-नाथ=मन के प्रेरक। कर कंजनि-दल-माल=अपने हाथों आप को कमल की माला पहनाऊँ। अपनौ भायौ=अपना चाहा हुआ; अपनी इच्छा के अनुकूल। जाल=कर्मजाल; कर्मफन्दा। सुजस रागी=ईश्वर के यशगान में अनुरक्त। जातना=पीड़ा; मृत्यु काल का कष्ट।

(२)

अनत=अन्यत्र। महातम=बड़ाई। खनाव=खुदवावे। छेरी=बकरी।

(३)

पनहि=प्रण को (ईश्वर का पतितों का उद्धार करने का प्रण)। दुबिधा=भेद। खरो=खरा; चोखा। सुरसरि=देवनदी; गंगा। . . .

(४)

पेंठ (पैंठ)=हाट; बाज़ार; दुकान; अथवा (पैठ) पहुँच; प्रवेश। फेंट पकड़ना=जाने न देना; रोकना।

(६)

हरि-विमुखन को संग=ईश्वर में मन न लगाने वालों का साथ; ईश्वर के विद्रोहियों का साथ। भंग=बाधा। चुगाना=चिड़ियों को दाना खिलाना; चुनाना। अरगजा=केशर, चंदन, कपूर आदि मिलाकर बनाया हुआ शरीर में लगाने का एक सुगंधित द्रव्य। मरकट=बन्दर। भूखन (भूषण)=आभूषण; गहना। छंग=गोद; अंक। पाहन (पाषाण)=पत्थर। निखंग (निषंग)=तरकस।

भक्त मीरा

(१)

कुल की कानि=कुल की मर्यादा का विचार; कुल का लिहाज़ या संकोच। लोई=एक प्रकार का कम्बल जो पतले ऊन से बुना जाता है। बनमाला=तुलसी, कुन्द, मंदार, पारिजात और कमल की माला। पोई (पोही, पोहना का भूतकाल, स्त्रीलिंग रूप)=गुथी; पिरोई।

(२)

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।

छुद्र-घंटिका (क्षुद्र घंटिका)=घुँघरू। नूपुर=पैर में पहनने का आभूषण; पैंजनी; घुँघरू।

(३)

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।

जोगण—(योगिनी; जोगिनी)=साधुनी; विरक्त स्त्री; वैरागिनी। करवट (संस्कृत— करपत्र; प्राकृत— करवत्त =आरा। करवट लूँगी कासी=काशी में जाकर आरे के नीचे कटकर प्राण दूँगी।

[सूचना—प्राचीन काल में काशी में एक तीर्थस्थल में लोग आरे के नीचे कटकर प्राण देना पुण्यकार्य मानते थे। उसी क्रिया को काशी-करवट लेना कहते हैं।]

(४)

करम गति टारे नाहिं टरे ।

नीच घर नीर भरे=डोम के यहाँ नौकरी की । हाड़ हिमालय गरे= पांडव लोग अन्तकाल में हिमालय चले गये थे, वहीं गल-गलकर इनका शरीरपात हुआ था । नागर=चतुर; नागरिक; सभ्य ।

(५)

मैं हरि बिन क्यों जिऊँ री माय ।

मूल न संचरै=मूल में प्रवेश नहीं करती; जड़ तक नहीं पहुँचती ।

गोस्वामी तुलसीदास

(नारद-मोह)

(१)

देवरिषि=(देवर्षि) नारद । सुमिरत हरहि···बाधी=हरि का स्मरण करते ही नारद को दक्ष का दिया हुआ 'एक जगह स्थिर न रह सकने का' शाप मिट गया । सापगति-बाधी=अस्थिर रहने का शाप मिट गया । जलचर-केतू=(मीनकेतन) कामदेव । सुनासोर=इन्द्र ।

(२)

सकल असम···प्रवीना=सब की सब (कामोद्दीपक) बाण चलाने की विद्या में प्रवीण थीं । असम=जो सग न हो, जैसे १,३,५,७ । असम-सर= पंचशर; कामदेव । मनोभव=कामदेव । सीम=सीमा । चाँपना=दबाना ।

(३)

हरिहि सिरु नावा=इन्द्र को प्रणाम किया । अहमिति (मैं हूँ ऐसा)= अभिमान । मार=कामदेव । जनि हरिहि सुनायहु=विष्णु को मत सुनाना ।

(४)

बरजि=रोक कर ।

(५)

ब्रह्मचरज=ब्रह्मचर्य । पन=प्रण । जोजन=योजन ।

(८)

गहरु = विलम्ब; देर। मृषा = मिथ्या।

(९)

ठयेऊ = ठाना है; दृढ़ संकल्प किया है; निश्चय किया है। भेउ = भेद।

(१०)

करहिं कूटि = दिल्लगी उड़ाते थे; व्यंग्य वचन बोलते थे; ताना मारते थे। हरि = (१) विष्णु; (२) बन्दर। नीक दीन्हि हरि सुन्दरताई = (१) विष्णु ने बड़ा सुन्दर रूप दिया है; (२) (ईश्वर ने) अच्छा बन्दर का सा रूप दिया है।

(११)

नाँठी = नष्ट कर दिया। मोह मति नाँठी = मोह ने बुद्धि को नष्ट कर दिया।

(१२)

मथत सिंधु·····करायेहु = यहाँ समुद्र-मंथन के समय शिव के विष पीने की बात निकाल कर नारद कह रहे हैं कि आपने ही शिव को बहका लिया था।

(१३)

डहँकि डहँकि = धोखा दे देकर; छलकर; ठग कर। एहा = यह। करषि लीन्हि = खींच ली; दूर कर दी।

(१४)

निअराई = पास आवेगी।

सत्यलोक = ब्रह्मलोक। इस लोक में जो पहुँच जाता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता। प्रलयकाल में भी यह लोक बना रहता है; नष्ट केवल नीचे के चार लोक होते हैं। सात लोकों में यह सर्वश्रेष्ठ लोक है। अन्य छः 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः और तपस्' लोक हैं।

(सरस-सवैया)

(१)

नूपुर = घुँघरू । कलेवर = शरीर । झँगा = (झगा) छोटे बच्चों के पहनने का ढीला कुर्ता । झलकैं = झलकते हैं; सुशोभित होते हैं । अरविंद = कमल । आनन = मुख । मरंद = पराग ।

(२)

दुति (द्युति) = कान्ति; शोभा; छटा । मंजुलताई = कोमलता । भूरि = अधिक; कई । कल = सुन्दर ।

(३)

आरि = हठ । करताल = ताली । अरैं = अड़ जाते हैं ।

(४)

अर्भक = बच्चा । पटु = कुशल; चतुर । हौं = मैं । साको (साका) = कीर्ति; यश । ढोटो = ढोटा; पुत्र ।

(५)

जुवा (युवा) = युवक ।

(६)

कागर = पंख । कीर = तोता । लस्यो (लसा) = सुशोभित हुआ । औध = (अवध) अयोध्या । हुते = थे । बटाऊ = बटोही ।

(७)

अजाखुर = बकरी का खुर । तटिनी = नदी । स्वे = वही; उसी । करारे = किनारे ।

(८)

परसे = स्पर्श करने से । तरनी = नाव । घरनी = स्त्री । बरु = चाहे ।

(९)

बन-बाहन (जल-बाहन) = नाव । हहा है = जोर से; 'हाहा' करके; खिलखिलाकर ।

(१०)

बनिता = स्त्री । बिथकौं = मुग्ध होगई ।

(११)

मैन = कामदेव । बिधु-बैनी = (बिधु-वदनी) चन्द्रमुखी । रंचक = थोड़ासा ।

(१२)

अजानी = अज्ञान; मूर्ख । कह्यो तिय··· जिन कान कियो है = जिनने स्त्री की बात मानी है; स्त्री के कहने पर ध्यान दिया है । किमि कै = किस प्रकार; कैसे ।

(पृष्ठ ३२)

(१३)

तून = तरकस । सुठि = सुन्दर । तुम त्यों = तुम्हारी भाँति ।

(१४)

सयानी = चतुर । उन = इशारा । लाहु = लाभ । बिगसीं = (बिकसीं) खिल पड़ीं ।

(पदावली)

(१)

हौं = मैं । मातु-मते महँ = माता की मति में । बिसिषन = बाणों से ।

(पृष्ठ ३३)

(२)

सेन (श्येन) = बाज । छति (क्षति) = हानि ।

(३)

गीध = गिद्ध । जटायु नाम का वह गिद्ध जो दशरथ का मित्र था । जब रावण सीता को हर कर लिये जाता था तब यह उससे लड़ा था और घायल हुआ था । राम के आने पर इसने सीता का पता बताया था । उसी समय इसके प्राण भी निकल गये थे । रामचन्द्रजी ने स्वयं इसकी अंत्येष्टि क्रिया की थी ।

सबरी (शबरी)=शबर जाति की एक स्त्री। इसका नाम श्रमणा था। यह बड़ी भक्त थी। सीता को ढूँढते हुए रामचन्द्रजी इसके आश्रम में पहुँचे थे। इसने उनकी बड़ी अभ्यर्थना की थी और उन्हीं की अनुमति से उनके सामने ही चिता में प्रविष्ट होकर यह स्वर्ग को सिधारी थी।

(४)

सुनरेस (सुनरेश)=अच्छा राजा। स्याम जलद=काले बादल। घोरत=शब्द करते हैं। धातु रँगमगे-सृङ्गनि=धातुओं (जैसे गेरू आदि रंगीन पदार्थों) के रंग से रँगे हुए, याने रंगबिरंगे पर्वत-शृंगों में। आदि अंभोज=आदि कमल जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति मानी जाती है। आदि बराह=वाराह रूप में भगवान् विष्णु। बिहरि=छेद कर [पुराणों में भगवान् विष्णु का वाराह अवतार लेकर समुद्र से पृथ्वी को अपने दाँतों में उठाकर लाने की कथा प्रसिद्ध है]। दसन=दाँत

रहीम

(दोहे)

(१)

चकोर (एक पक्षी)="यह चन्द्रमा की ओर देखता रहता है और अग्नि खाता है" ऐसी बात प्रसिद्ध है। चन्द्रमा की ओर देखने रहने का गुण देखकर इसे चन्द्रमा का अनन्य प्रेमी कहा जाता है, और यह भी तर्क किया जाता है कि शिवजी के मस्तक पर चन्द्रमा का निवास देखकर यह सदैव प्रयत्न करता रहता है कि अग्नि खाकर भस्म होजाऊँ और भस्मधारी भगवान् शिव मुझे धारण करें जिससे कि मैं अपने प्रेमी तक पहुँच जाऊँ।

(२)

ज्यों ससि ··चकोर। कवि कहता है कि चकोर शीतांशु चन्द्र के योग से ही आग पचा लेता है।

(३)

गाढ़े=कठिन।

(५)

दर दर=दरवाज़े दरवाज़े। मधुकरी=बने हुए भोजन की भिक्षा।

[साधु लोग सात गृहस्थों के यहाँ जाकर भोजन की भिक्षा लेते हैं, वह वृत्ति 'मधुकरी-वृत्ति' कहलाती है। मधुकर अर्थात् भ्रमर की अनेक स्थानों से रस लेने की वृत्ति के समान होने के कारण यह वृत्ति 'मधुकरी-वृत्ति' कहलाई।

(७)

पुरुष पुरातन=(१) प्राचीन अर्थात् वृद्ध पुरुष।
(२) आदि पुरुष; विष्णु।

(१२)

गुन (गुण)—(१) रस्सी; (२) योग्यता।

(१३)

भृगु मारी लात= एक बार भृगु मुनि ने यह जानना चाहा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है। आपने ब्रह्मा को नमस्कार नहीं किया, और महेश से कुछ कटु शब्द कहे। दोनों को क्रोध हुआ। अब विष्णु की बारी आई, उनको आपने सोते समय लात मार दी; किन्तु क्रोध करने के बदले विष्णु मुनि से यह पूछने लगे कि आपके पैर में चोट तो नहीं लगी?

(१८)

पेट लागि·····भीम। महाभारत की कथा प्रसिद्ध है कि अज्ञातवास करते समय भीम ने राजा विराट के यहाँ भनसिया अर्थात् भोजन बनाने का काम किया था।

(२०)

फरजी=शतरंज का एक मुहरा। इसे वज़ीर भी कहते हैं।

(२१)

बारे=(१) बचपन में; (२) जलाने पर। बढ़े=(१) बड़ा होने पर; (२) बुझने पर।

(२४)

टूटे=बिगड़ने या अनबन होने पर।

(२८)

आखर=अक्षर। कुण्डली=शरीर को समेट लेने की क्रिया।

(२९)

घूर=कूड़ा-कचरा फेंकने का स्थान।

(३२)

जेहि·····तरी=[रामचन्द्र जी के चरणों की धूलि के स्पर्श से गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार हुआ था।]

(३३)

नाद·····मृग=गाने बजाने पर रीझ कर हरिण ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि अहेरी उन्हें पकड़ लेते हैं।

(३७)

हरि हाथी···पहिचानि=गजेन्द्र-मोक्ष की कथा की ओर कवि का संकेत है।

(३८)

हहरि कै=घबड़ा कर; गिड़गिड़ा कर।

(३९)

महि नभ सर पंजर कियो=भागवत की कथा प्रसिद्ध है कि एक बार अग्नि ने पेट-पीड़ा के कारण श्रीकृष्ण की आज्ञा से खांडव बन जलाया था। उस समय यह सोच कर कि इन्द्र वह अग्नि बुझा न दें, अर्जुन ने उस बन को पृथ्वी से स्वर्ग तक आग्नेयास्त्रों का पिंजड़ा बना डाला था।

(४०)

बावनै नाम (बावन; बामन)=छोटे क़द का मनुष्य; बावन अंगुल का शरीरवाला। दानवों के देवों के राज्य पर अधिकार करने पर भगवान् ने बामन रूप धारण कर बलि से तीन पैर पृथ्वी का दान माँगा था और फिर विराट-रूप धारण कर तीन पग में तीनों लोकों को नाप लिया था। कवि कहता है कि फिर भी उनका नाम बामन ही रहा।

(१४)

समुद्र-मंथन की कथा देखिये।

(५२)

पानो=(१) जल; मान; प्रतिष्ठा; (२) आब; चमक। न ऊबरै=किसी काम का नहीं रहता।

(६१)

लटी=खराब; बुरी।

केशवदास

(रावण-अंगद-संवाद)

(पृष्ठ ४१)

अंगद कूदि गये·····

आसनगत=सिंहासन पर बैठा हुआ। करहाट=कमल की छतरी जो पहले पीली रहती है और बीज पकने पर हरी हो जाती है।

पढ़ो विरंचि·····

जीव=बृहस्पति। सोर (शोर)=बकवाद। बेर कै कही=कितनी बार कहा। न भीर मंडि रे=भीड़ न लगाओ।

अंगद यों सुनि·····

लोग अनैसे (अनिष्ट लोग)=निशाचर।

(पृष्ठ ४२)

लंक-नायक को·····

देव-दूषण को दहै=देवताओं के शत्रुओं को (दहने) जलानेवाला।

श्रीरघुनाथ को बानर केशव·····

आयो हो=आया था। हयो (हन्यो)=मारा। त्रिकूट=वह पर्वत जिस-पर लंकापुरी स्थित थी।

राम राजान के राज·····

देवि=पटरानी (जिसके साथ राज्याभिषेक हो उस स्त्री को 'देवी' कहते हैं)। आसुहीं=(आशु ही) शीघ्र ही। ओक=देश; घर।

लोक-लोकेश त्यों·····

लोक-लोकेश=लोक और लोकपाल। सींव=सीमा। भ्रू भंग ही=टेढ़ी नज़र करते ही। त्यों=सहित।

(पृष्ठ ४३)

राम को काम कहा·····

भृगुनंदन=परशुराम। छिति-छत्र हत्यो=(क्षिति छत्र हत्यो) पृथ्वी भर के क्षत्रियों को मार डाला। हैहयराज=सहस्रार्जुन।

सिधु तर्‌यो उनको बनरा·····

जराइ जरी=मणि-जटित।

नील, सुखेन·····

आठहु=नील, सुखेन, हनुमान, नल, सुग्रीव, जामवन्त, राम और लक्ष्मण। अपूतन की पदवी पगु धारे=निपुत्री की गति को प्राप्त हुए। बपुमारे=बाप को मारनेवाले को।

(पृष्ठ ४४)

जो सुत अपने बाप को·····

प्रकास (प्रकाश)=प्रकट रूप से; खुल्लमखुल्ला, ललकार कर। त्रास=संकोच।

इनको बिलगु·····

बिलगु मानना=बुरा मानना।

उरसि अंगद लाज·····

उरसि=हृदय में।

शत्रु, सम, मित्र·····

सम=समान भाव रखनेवाला; न शत्रु और न मित्र। नूत=नूतन; नवीन।

सका मेघमाला·····

सका (फ़ारसी—सक्का)=भिश्ती; पानी भरनेवाला। शिखी=अग्नि।

(पृष्ठ ४५)

पेट चढ़्यो·····

पेट चढ़्यो=गर्भ में रहा। रह्यो चढ़ि चित्त सों (चित्त सों चढ़ि रह्यो)=मन में अहंकार भर गया है।

निकार्‌यो जो·····

वानराली (वानर+आली)=बानरों की सेना।

हाथी न साथी·····

अंतकलोक=यमलोक।

(पृष्ठ ४६)

जैसो तुम·····

बाघ=बाज़ीगर । भगर=कबड्डी का खेल

तपो जपी·····

छिप्र ही=शीघ्र ही ।

अमानुषी·····करौं=इस भूमि को मनुष्य और वानर विहीन कर दूँगा ।

पाहन ते पतिनो·····

पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे=पत्थरों के समूह कमल के पत्तों के समान पानी में उतराने लगे । अजहू धरको रे=अब भी (धड़का) सन्देह है । नर वानर को=नर और वानर की सन्तान ।

देहि अंगद·····

अक्ष-रिपु = हनुमान ।

(पृष्ठ ४७)

लंक लाइ गयो ·····

शोधिकै=अच्छी तरह । हौं=मैं ।

अंगद रावण को मुकुट·····

प्रस्थान=यात्राकाल में शुभमुहूर्त न मिलने के कारण, पहलेही शुभ-मुहूर्त में अपनी कोई वस्तु दूसरे स्थान में रखा दी जाती है, उस वस्तु को 'प्रस्थान' कहते हैं ।

रसखान

धरयो हरि छत्र पुरन्दर कारन=पौराणिकी कथा प्रसिद्ध है कि ब्रज में शरद् ऋतु के आरम्भ में इन्द्र की पूजा की जाती थी, परन्तु श्रीकृष्ण के कहने से वह बन्द करदी गई । इसपर क्रुद्ध हो इन्द्र ने ब्रज-भूमि पर प्रलयकारी वर्षा की । उस समय श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर

उसका छत्ते का सा उपयोग कर सबकी रक्षा की। इसी कारण श्रीकृष्ण को 'गिरिधारी', 'गोवर्द्धनधारी' आदि नामों से पुकारा जाता है। इन्द्र की पूजा बन्द की जाने पर उनके स्थान पर आजतक भी गौवों और गोवर्द्धन पर्वत की पूजा की जाती है जोकि ब्रज में ही नहीं प्रायः समस्त भारत के हिन्दू समाज में प्रचलित है।

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल·····दुख भारो—द्रौपदी (पांडव-पत्नी) को दुर्योधन के दरबार में नग्न करने का प्रयत्न किया गया था। उस समय श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के वस्त्र को अनन्त करके उनकी लाज बचाई। गनिका (गणिका)=वेश्या। गज=हाथी। यहाँ गजेन्द्र से तात्पर्य है जिसे भगवान् ने ग्राह से बचाया था। गीध= जटायु नामक गिद्ध, जो सीता को हरकर ले जाते समय रावण से लड़ा था और घायल होगया था। रामचन्द्रजी को समाचार बताने के बाद इसकी मृत्यु हुई थी और पिता दशरथ का मित्र होने के कारण राम ने इसकी अंत्येष्टि की थी। अजामिल=इस नाम का एक पापी ब्राह्मण मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' को पुकार रहा था। 'नारायण' नाम के ही प्रभाव से उसको मुक्ति मिली। गौतमगेहिनी=गौतम ऋषि की पत्नी 'अहल्या'। इनको इन्द्र ने छलपूर्वक दूषित कर दिया था, अतः पति के शाप से ये पाषाण-मूर्ति होगई थीं, और श्रीराम ने इनका उद्धार किया था। तरनि तनूजा=सूर्य पुत्री; यमुना।

सेनापति

(१)

बरन बरन (वर्ण वर्ण का अपभ्रंश)=प्रकार प्रकार के। चतुरंग= चतुरंगिणी सेना से अभिप्राय है। कवि दलों (पत्तों) के साथ भाँति भाँति के फूल देखकर, यहाँ ऋतुराज वसन्त के साथ चतुरंगिणी सेना का दर्शन करता है। लहियत है (संस्कृत-लभ्=पाना; प्राकृत—लहना)=पाना; प्राप्त करते हैं; पाते हैं (देखते हैं)। बंदी (बंदीजन)=चारणों की एक जाति जो राजाओं का यशगान करती थी; भाट। बिरद (शुद्ध रूप—विरद; संस्कृत—विरुद)=बड़ा नाम; ख्याति; यश; कीर्त्ति।

गुन (गुण)=(१) स्वभाव; धर्म; (२) यश; कीर्त्ति; (३) सुख; स्नेह। गहियत है (गहना (क्रिया);संस्कृत—ग्रहण) धारण करना; प्राकृति—ग्रहण=पकड़ते हैं; धरते हैं (ग्रास करते हैं)। पुहुपन (पुहुपों; संस्कृत—पुष्पों)=फूलों। सौंधे के=(सौंधा, सुगंधित, संस्कृत—सुगध)=सुगंधित द्रव्य के; इत्र आदि सुगंधित पदार्थों के। माँझ (सं० —मध्य)=बीच में; में।

(२)

केसू=टेसू; पलाश; छेवले के फूल; ढाक, (संस्कृत—किंशुक)। बिसाल (विशाल)=(१) विस्तृत; (२) सुन्दर; भव्य। स्याम स्याम=काला; साँवला; काला नीला मिश्रित रंग। भेंटि (भेंट-मेल, मुलाक़ात)=मिलकर; मुलाक़ात करके। [पलाश के फूल की कटोरी काली दिखती है, अतः कवि ने 'संग स्याम रग भेंट' लिखा है।] मसि (संकृत)=स्याही; काजल। मधुकर=भँवरे। पुंज=समूह। मलय=मैसूर राज्य के दक्षिण में एक पर्वत जहाँ चन्दन अधिकता से उत्पन्न होता है। वायु और उसके पर्यायवाची शब्दों का विशेषण होने पर इस शब्द का अर्थ सुगंधित अथवा दक्षिणी हो जाता है। अतः 'मलय पवन' का अर्थ 'सुगंधित वायु' होगा। भाउ (भाव का विकृत रूप)=भाव; विचार। अनुसुलगि (अनसुलगे)=जो जले नहीं; जिनमें आग नहीं लगी है। विरही=विरह के सताये हुओं को। काम=कामदेव। दहन (सं०दह)=जलाने के लिये। क्वैला=कोयला (जो जलाया जाता है)। परचाए हैं=सुलगाये हैं।

(३)

वृष=वृष राशि। तरनि (सं०-तरणि)=सूर्य। सहसौ (सं० सहस्र)=सहस्रों; सूर्य को सहस्रांशु कहते हैं; अतः सहसौ का अर्थ यहाँ, 'समस्त' 'सब' लिया जा सकता है। तचति (हिन्दी—तचाना=तपाना)=तपती है। झरनि (सं०-झाला, हिन्दी—झार)=ताप; दाह; ज्वाला; लपट; (आँच से)। सीरी (सं०—शीतल, प्रा०सीअड़, हिं०—सीड़)=ठंडी। धमका=उमस। ज्यौं=इतनी कि। खरकत है=हिलती डुलती है; सरकती है।

(४)

तपन=सूर्य। भार=भाड़। सलिल पट=गीले कपड़े। लुवन की लपट=लू की लपटें; गरम हवा के थपेड़े। गरद=गर्द; धूल; राख। धूँधि=धुंध छा गई है। गगन गरद धूँधि=आकाश में धूल छा जाने के

कारण धुंध छा गई है; अँधेरा हो गया है। रूधि रहीं (रूँधना=चारों ओर से घेरना; रोकना; छेकना)=घिर गई हैं; रुक गई हैं, छिक गई हैं। छिति (क्षिति)=पृथ्वी। व्यौम (व्योम)=आकाश। पुट-पाक=धातुओं को वैद्यों की रीति से जलाकर भस्म करने को 'पुट-पाक' करना कहते है।

(५)

उनए=झूम पड़े हैं; घिर आए हैं। जलद=बादल। घुमरत=घुमड़ते हैं। तोइ (तोय)=पानी। छयौ=ढक गया है; घिर गया है। तिमिर =अंधकार। भरम (भ्रम)=धोखा; भूल। 'रहत हरि सोइ कै'=पुराणों के अनुसार आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान् का सो जाना और कार्तिक शुक्ल एकादशी (देवोत्थान एकादशी) को उठना माना जाता है। उसी से कवि कहता है कि चार माह बादलों की अँधियारी को अँधेरी रात्रि समझ भगवान् सो जाते हैं।

(६)

दिग-मंडल=समस्त दिशाएँ, अतः सब ओर। सृंग (शृङ्ग)=शिखर; चोटी। फटिक (स्फटिक)=एक पारदर्शक सफ़ेद पत्थर। अंबर=आकाश। अडंबर (आडंबर)=गंभीर शब्द; तड़क-भड़क; टीमटाम। छिछकैं=छिड़कते हैं। छछारे=छींटें। सुधा=चूना (सुधा के महल=चूना से पुते हुए महल)। तूल=रुई। पहल=पहला, रुई की तह। क्वार=कुआर का महीना; आश्विन।

(७)

अध=नीचे। अरध (अर्द्ध)=ऊपर। बरन (वर्ण)=रंग।

(८)

पृष्ठ ५४

भीत=भयभीत; डरी हुई। पानि (पाणि)=हाथ। पाउक (पावक)=अग्नि।

(९)

सविताऊ (सं० सवितृ)=सूर्य भी। दुति (द्युति)=प्रकाश; चमक; शोभा। बासर=दिन। चाहत=देखता है।

(१०)

बखार (बुखार अथवा बखारी)=भंडार; अन्न रखने का कोठा। से=समान। उखारत है=उखाड़े दे रहा है; खोले दे रहा है। सून=शून्य। ठिरिकै=ठंढ से ठिठर के; सिकुड़ और ऐंठ कर। सहस-कर=सहस्रांशु; सूर्य।

बिहारी

(पृष्ठ ५५)

मेरो भव-बाधा·····

झाँई = (१) परछाँही, (२) झलक या झाँकी, (३) ध्यान। हरित = (१) हरे रंगवाला, (२) हराभरा, प्रसन्न, (३) (हृत का अपभ्रंश) हरण किया हुआ। दुति (द्युति) = प्रकाश; तेज। स्यामु = (१) श्याम रंग, (२) श्रीकृष्ण, (३) कलुष, पातक आदि।

पाइ महावरु·····

महावरु = स्त्रियोंके पैरों में लगाने का लाल रंग। महावरी = महावर की गोली। यह रुई को महावर में भिगोकर बना ली जाती है—महावर लगाते समय इसको मलमल कर रंग निकाला जाता है। मींड़ति जाइ = मसलती जाती है; मलती जाती है

(अंग-अंग-नग)

दिया बढ़ाएँ हूँ = दीपक को बुझाने पर भी।

पत्रा हीं तिथि·····

पत्रा = तिथि देखने का पञ्चाङ्ग। पून्यौई = पूर्णिमाही। आनन = मुख। ओप = आभा, चमक। उजास = उजाला, प्रकाश।

केसरि कै सरि·····

केसरि = केसर अथवा कुंकुम। कै = कर। सरि = बराबरी। कितकु = कितना। अनूप = सुन्दर, कान्तियुक्त; आबदार। दुरि जातु = छिप जाता है; फीका पड़ जाता है। जातरूप = (१) सुवर्ण, (२) सहज सुन्दर; जन्म से ही सुन्दर।

नित प्रति एकत·····

इस दोहे में 'बैस बरन-मन एक' जुगलकिसोर का विशेषण है। जुगलकिसोर (युगलकिशोर) = राधा और कृष्ण। चहियत = चाहिये; आवश्यक हैं। लोचन-जुगल अनेक = अनेक लोचनद्वय, कई जोड़ी आँखें।

तूँ रहि, हौं हीं सखि·····

इस दोहे में, गणेश पूजन के उपरान्त चन्द्रोदय हुआ या नहीं यह देखने के लिये दो सखियों का अटारी पर जाना लक्ष्य करके, एक सखी

द्वारा दूसरे के सौन्दर्य का बड़े ढङ्ग में वर्णन कराया गया है। रहि=रहु, रहने दे। हौं हीं=मैं ही। बाला=हे बाले; हे सखी। सबहिनु=सब लोग; दूसरे लोग।

(पृष्ठ ५६)

छाले परिबे कैं डरनु·····

झझकत = डरती हुई; हिचकिचाहट के साथ। झँवाना=रगड़ाना; मैल साफ़ कराना; जैसे लोग खपरी या ईंट के टुकड़े से रगड़कर पैरों का मैल छुड़ाते हैं। इसीसे 'झँवैयत, (झँवाते हैं) बना है। झँवा=बर्तन या पैर की मैल साफ़ करने की खपरी या ईंट आदि की टुकड़ी।

जदपि लौंग ललितौ·····

नायक रूठी हुई नायका का मान दूर करने के लिये, बिना यह प्रकट किये कि वह उसका रूठना जानता है और इस कारण भयभीत है, उस शृंगारविहीना नायिका की नाक पर लवंगफूल को देखकर कहता है कि इसे ज़रा भी न पहना कर, क्योंकि इसके कष्ट से तेरी नाक चढ़ी (फूली) रहती है और मुझे भय बना रहता है। इक आँक=एक क्षण भी; एक अंक भी। साँक=शंका; भय।

या अनुरागी चित्त की·····

गति = रीति; ढंग।

स्याम रंग = (१) काला रंग, (२) कृष्ण प्रेम।

उज्जलु=(१) सफ़ेद, (२) पवित्र।

(पृष्ठ ५७)

अजौं तरयोना हीं·····

अजौं=अब तक भी, आज भी। तरयौना (श्लिष्ट पद है)+(१) अधोवर्ती, (२) कान में पहनने का आभूषण 'तरकी'। श्रुति=(१) वेद, (२) कान (यह भी श्लिष्ट है)। नाक=(१) नाक (नासिका), (२) स्वर्ग। बेसरि=(१) स्त्रियों का एक आभूषण, (२) ख़च्चर के समान नीच प्राणी। मुकुतनु=(१) मोतियों, (२) जीवन्मुक्त प्राणियों; सज्जनों।

(पृष्ठ ५८)

नाह गरजि·····

यह दोहा रुक्मिणी-हरण के प्रसंग का है। सेना द्वारा सुरक्षित रुक्मिणी को लेने के लिये नाथ (श्रीकृष्ण) गरजते हुए, ललकारते हुए पहुँचते हैं। नाह = नाथ; श्रीकृष्ण। नाहर = शेर; सिंह। टेरि = पुकार कर; ललकार कर। बंदि = क़ैद; बन्धन। बिच = बीच में।

यह बरिया नहिं और की·····

बरिया = समय; अवसर। यह बरिया = यह अन्तिम समय। करिया [कर्ण (सं०) = नाव की पतवारी; यहाँ इसका अर्थ कर्णधार अर्थात् मल्लाह लिया गया है] = नाविक; केवट।

(पृष्ठ ५९)

आवत जात न जानियतु·····

घरह = घर का, अर्थात् जिसने ससुराल में घर कर लिया हो। खरौ = खरा होते हुए भी; तेज होते हुए भी; उग्र स्वभाव का होते हुए भी। पूस दिन मानु = पूस के दिन का मान (प्रमाण)। सियरानु = शीतल पड़ गया है; ठंडा पड़ गया है।

कहलाने एकत बसत·····

कहलाने (कहुलाने) = कुम्हलाए हुये; व्याकुल होकर; गर्मी से तंग आकर। दाघ = तपन; गरम; उष्ण। निदाघ = ग्रीष्म ऋतु।

यौं दल काढ़े बलक तैं·····

इस दोहे में शाहजहाँ के राजत्वकाल में मुग़ल सेना को बलख़ की लड़ाई (सन् १६४७) से शत्रुओं और बर्फ़ से सकुशल बचा लाने पर मिर्जा राजा जयशाह की प्रशंसा की गई है। कवि मिर्जा राजा के कार्य को उसी प्रकार प्रशंसनीय समझता है जिस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा दैत्य अघासुर के मुख से गौवों और ग्वालों के बचाये जाने को।

———

भूषण

(पृष्ठ ६०)

(१)

दावा = अधिकार। नाग = (१) सर्प, (२) हाथी। जूह (यूथ) = समूह; झुण्ड। पुरहूत = इन्द्र [सं० पुरुहूत]

(२)

बिहद (बेहद) = अत्यधिक। गैबरन के (गयबरों के) = श्रेष्ठ और मतवाले हाथियों के। रलत है = मिलती है। ऐल = (१) बाढ़; बूड़ा, (२) कोलाहल। खैल भैल = खलभली मच गई। तरनि = सूर्य

(पृष्ठ ६१)

(४)

इन्द्र को अनुज = उपेन्द्र; विष्णु।

(५)

(पृष्ठ ६२)

दिवाल = भीति; मर्यादा। दुनी = दुनिया; संसार।

(६)

मुहीम = चढ़ाई; दुष्कर कार्य। उबरते = बचते।

(७)

पारथ (पार्थ) = अर्जुन। [जब पांडव अज्ञातवास करते थे, उस समय अर्जुन ने राजा विराट की गौवों का अपहरण करनेवाले कौरवों को हराया था]। हथ्याय (हथियाइ) = छीनकर।

(पृष्ठ ६३)

(८)

लोमस = एक ऋषि, जो बड़े दीर्घायु थे। करन वारो कवच (कर्णवाला कवच) = वह कवच जो सूर्य ने कर्ण को दिया था। यह कवच अभेद्य था। वे ही काज = बिना मतलब ही; व्यर्थ ही।

(९)

मेरहू=सुमेरु पर्वत भी (सुमेर पर्वत सोने का बना माना जाता है)। कथान मैं=कथाओं में। बलकत है=बलकता है; उबल पड़ता है।

(१०)

चकत्ता=औरंगज़ेब; चंगेज़ख़ाँ की संतान। दहसति=डरती है। बिलखि=रो रो कर। बिलखात (बिलखता है)=रोता है; बिलाप करता है। नारी फरकति=नाड़ी फड़कती है। हहरि=(१) दुःख से हाय हाय करते हुए, (२) डरकर।

पद्माकर

(पृष्ठ ६४)

(१)

अघहर (अघ=पाप+हर=हरण करनेवाली)=पाप से मुक्त करनेवाली; पवित्र करनेवाली। फहर (सं०-प्रसरण; हि०—फहराना)=फैलाव। छहर (सं०-क्षरण)=फैलानेवाली; छितरानेवाली; वर्षा करनेवाली; बौछार। गवरी (फ़ा०)=मन भानेवाली; सुन्दर [कहीं कहीं 'रावरी लहर' पाठ भी मिलता है]। कहर=आपत्ति।

(२)

कामतरु=कल्पवृक्ष।

(पृष्ठ ६५)

(३)

कूरम (कूर्म)=कछुवा। कोल=बराह; सूअर। [पुराणों के अनुसार पृथ्वी कछुए की पीठ, बराह के दाँत और शेष नाग के सिर पर स्थित मानी जाती है]। थित=स्थित।

(४)

हौं=मैं। भूतन को पति=भूतों के स्वामी; महादेवजी। तनग्यारह=महादेवजी के ग्यारह तन (रूप) माने जाते हैं।

(पृष्ठ ६६)

(५)

प्रेत-नाह (प्रेतनाथ)=यमराज। गरद=धूल। गरद कीन्हे=धूल में मिला दिया; नष्ट कर दिया।

(६)

गोबिन्द = विष्णु भगवान्। चतुरानन=ब्रह्मा वृषपति=शिवजी।

(७)

पञ्चमुख पाये = (कैलासवासी होकर) पञ्चमुख होगया।

(पृष्ठ ६७)

(१०)

नेकहूँ=ज़रा भी। छार (क्षार)=भस्म; राख। [छार करिहौं=नष्ट कर डालूँगा]।

दीनदयालगिरि

(अन्योक्तियाँ)

(पृष्ठ ६८)

रसाल

रसाल=(१) आम का वृक्ष, (२) रसिक पुरुष; सहृदय। साखा=(१) शाखा, (२) गोत्र; वंशावली द्विजवर=(१) श्रेष्ठ पक्षी, (२) श्रेष्ठ ब्राह्मण। धात्री=(१) पृथ्वी; धरित्री, (२) धाय; माता।

कदली

रम्भा=केला। खेत=क्षेत्र; स्थान। रहै दीठि दीने=नष्ट करने की घात में लगा रहता है।

पलास

दली=दल अर्थात् पत्तोंवाला वृक्ष। नय=नया या सूखा हुआ; नग्न। नख नाहर रूप=सिंह के नख के समान।

(पृष्ठ ६९)

शाल्मली

साल्मली=शाल्मली का बिगड़ा हुआ रूप। गीधे=लुभा गये। आमिख (आमिष)=मांस।

वंस

वंस (वंश)=बाँस। सार=तत्व; बल। मलै (मलय)=चन्दन। हुतास (हुताश)=अग्नि। गंधसार=चंदन।

करीर

करीर (करील)=बिना पत्तों की काँटेवाली एक झाड़ी।

(पृष्ठ ७०)

कपास

गुन=(१) गुण, (२) सूत। ठग में (ठगमय)=धूर्त्ततापूर्ण; ढोंगी।

(पृष्ठ ७१)

आध्यात्मिक भाव

इस छप्पय में ब्रह्म और जीव को पक्षी माना गया है और उन्हें 'ऊर्ध्वमूल अधः शाखा' वाले वृक्ष पर स्थित बतलाया गया है। जीव को बहुफल चाखा अर्थात् फल का भोक्ता और ब्रह्म को अभोक्ता और निरेरछु बताया गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(कालिन्दी की कमनीयता)

(१)

तरनि-तनूजा-तट (तरणि=सूर्य; तनूजा=पुत्री)=यमुनातट। मुकुर=दर्पण। कै=अथवा कि। प्रनवत=प्रणाम करते हैं। नै रहे (नय रहे)=नव रहे हैं; झुक रहे हैं।

(२)

सवालन=(यह शब्द पानी में फैलने वाले, बालों के लच्छों की तरह एक तृण—'सिवार' के विकृत रूप का बहुवचन है)=सिवारों के ।

(३)

हरिपद-परस-हेत=विष्णु के चरणों का स्पर्श करने के लिये । कमला=लक्ष्मी ।

(६)

गुड़ी (गुड्डी)=पतंग ।

(७)

जितो=जितना ही । रजत=चाँदी ।

(८)

कारण्डव=हंस की जाति का एक पक्षी; एक प्रकार का बत्तख़ । रोर=कलकल; हल्ला; कोलाहल ।

(९)

सतगुन=सतोगुण ।

कविवर श्रीधर पाठक

(काश्मीर-वर्णन)

(पृष्ठ ७५)

धनि धनि श्रीकश्मीर-धरनि·····

कश्यप-जस-धुजा=कश्यप मुनि की कीर्ति-ध्वजा । [कहा जाता है कि पहले काश्मीर में जल ही जल था; कश्यप ऋषि ने बारामूला के मार्ग निकाल कर इसे रमणीयता प्रदान की । अतः कश्यपजी के प्रताप से इसकी शोभा होने के कारण कवि ने इसे 'कश्यप-जस-धुजा' कहा है ।]

(पृष्ठ ७६)

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि·····

काम=कामना; इच्छा । किंकरता (किंकर=दास)=सेवा ।

चहुँदिसिहिम गिरि·····

मौलि-अवलि (मौलि = सिर, अवलि = पंक्ति) = सिरावली; सिरों की क़तार। सेली = स्त्रियों का एक आभूषण।[1]

सुरपुर अरु कश्मीर·····

समुन्दर = समुद्र। ओक = देश; घर।

अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)

(गोचारण से प्रत्यागमन)

(पृष्ठ ७७)

अवसान = अन्त। लोहित = रक्त वर्ण का; लाल। पुलिनों पर = नदी के तटों पर। अचल = पर्वत। पादप-शीश-विहारिणी = वृक्षों की चोटियों पर विहार करनेवाली।

(पृष्ठ ७८)

तिरोहित हो चला = विलीन हो चला। क्वणित = शब्दायमान।

(पृष्ठ ७९)

ककुभ = दिशा। कदन कर = नष्ट कर। अतसि-पुष्प = अलसी का फूल।

(पृष्ठ ८०)

नव-राग-मयी-दिशा = नवीन रंग से युक्त दिशा (पहले प्रकाशमयी थी अब कालिमामयी)। कनीनिका = आँख की पुतली का तारा।

(आँख का आँसू)

(पृष्ठ ८१)

(३)

अरमान = अभिलाषा; लालसा।

(पृष्ठ ८२)

(६)

मकर करना = छल करना; धोखा देना; फ़रेब करना।

(७)

आन = प्रतिज्ञा; टेक; हठ।

(८)

सितम = ग़ज़ब; अनर्थ। भरम = रहस्य; भेद [भरम खोना = भंडाफोड़ करना; रहस्य खोलना]।

(पृष्ठ ८४)

(१६)

बसर होता है = बीतता है; निर्वहन होता है।

बाबू जगन्नाथदासजी 'रत्नाकर'

(उद्धव के प्रति गोपियों के वचन)

(१)

भारी भरमाये हौ=बड़ी भूल में पड़े हो; बड़े भ्रम में पड़े हो।

(२)

ससा-सिंग (शशा-शृंग)=ख़रगोश के सींग [ख़रगोश के सींग नहीं होते; कवि यहाँ गोपियों के मुख से उद्धव के असंभव को सम्भव करने के व्यर्थ उद्योग की बात कहला रहा है]।

(३)

बराइहै=दूर करेगा; रक्षा करेगा।

(४)

जोहि=देखकर। जकौ (जकते हो)=धुन लगाए रहते हो; रटते हो।

(५)

बसीठ=दूत। कूर (क्रूर)=दुष्ट; दुष्टा।

कूबरी (कुबरी)=कंस की एक दासी जिसकी पीठ टेढ़ी थी; कुब्जा। यह कृष्ण पर प्रेम रखती थी।

(६)

वैसियै=वैसी ही। गिरवर धारि=गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर। नातरु=नहीं तो।

(७)

आँस भरि ऐहैं (आँसू भरि ऐहैं)=आँखों में आँसू भर आवेंगे।

गजेन्द्र मोक्ष

(१)

मतंग=हाथी। अवराधे पै=आराधना करने पर; उपासना करने पर। दृगनि नेह नाधे पै (नेह नाधे दृगनि पै)=स्नेह से (नधे) जकड़े या (गजेन्द्र की ओर) खिंचे हुए नेत्रों में। वितुण्ड=हाथी।

(२)

चख=आँख। पानिप=पानी। पौरि (पौरी)=ड्योढ़ी। दुरि=छिपकर। आतुर=(व्यग्र, व्याकुल) यहाँ "आतुरता के अर्थ में व्याकुलता"। उमहि आइ=उमड़ आई। [आतुर उमाहि आइ=व्याकुलता उमड़ पड़ी।]

(३)

छत (क्षत)=घाव; ज़ख्म। दराज (फ़ारसी शब्द)=दीर्घ।

(४)

औचक=सहसा; अचानक। भभरि (भभरना; भयभीत होना; भ्रम में पड़ना)=भयभीत होकर।

(५)

पुसकर सौं (पुष्कर से)=जलाशय से। हरबर सौं=जल्दी से; शीघ्रता से।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

कैकेयी का अनुताप

(पृष्ठ ६१)

उटज=झोंपड़ी। नीले वितान के तले=नीलाकाश के तल में। [आकाश वितान (चँदोवा) के सदृश दिखता है]। दीप बहु जागे=यहाँ दीप शब्द ताराओं के अर्थ में लिया गया है; जिस प्रकार चँदोवे में दीप

जलता है, उसी प्रकार नीलाकाश में तारागण चमक रहे थे। परिणामोत्सुक=भरत की प्रार्थना का क्या परिणाम होता है इसकी उत्सुकता से भरे हुए।

(पृष्ठ ६२)

असंख्य तरंगा=अनगिनती लहरों से युक्त। [कैकेयी के मन में अनेकों भाव उत्पन्न हो रहे थे।]

(पृष्ठ ६४)

बाधा = आपत्ति। श्रीखण्ड = चन्दन।

(पृष्ठ ६५)

वैतरणी-सी हैं आज जाह्नवी-वरुणा=आज (जाह्नवी) गंगा और उसकी सहायक नदी वरुणा जो स्वर्ग देनेवाली हैं, वैतरणी के समान नरक देनेवाली जान पड़ती हैं। पंकिला = कीचड़युक्त।

(पृष्ठ ६६)

दैत्यों की भी दुर्वृत्ति यहाँ फलती है = राक्षसों का दुश्चरित्र भी यहाँ सफल हो जाता है। [कैकेयी यहाँ राम को वनवास देने की अपनी दुर्वृत्ति का संकेत कर रही है, वह अपने को राक्षसी समझ रही है और कहती है कि मेरे उस दुष्कर्म का फल भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि मेरे ऐसा करने से तुम भ्राताओं का परस्पर प्रेम सब पर प्रकट होगया। इस कथन से रामावतार के उद्देश्य की ओर भी संकेत होता है, क्योंकि न कैकेयी वनवास की आज्ञा देती और न राक्षसों का दमन होता।] हँस पड़े देव····· धुन कर = देवतागण इस कारण हँस पड़े कि जिस तर्क के सहारे कैकेयी राम को लौटा लेजाना चाहती है वही उनको वन में रहकर राक्षस-दलन का कार्य करने को बाध्य करेगा। राक्षस इस कारण रो पड़े कि इस तर्क को सुन राम लौटेंगे तो नहीं, वन में टिक कर उनका नाश करेंगे। कुहकिनि='राम राम' कूकनेवाली। कुहुक=जिसके हेतु कुहका करती हो, अर्थात् 'राम'।

बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

सारनाथ के प्रति

(१)

वरुणा=वरुणा नदी जो सारनाथ के पार्श्व में बहती है। सारनाथ एक इतिहास-प्रसिद्ध नगर था। यहीं भगवान् बुद्ध ने सर्वप्रथम उपदेश किया था। मूलगन्ध-कुटी-विहार नामक यहाँ बौद्धों का प्रसिद्ध विहार है।

(२)

पार्थिव=राजसी। तथागत=भगवान् बुद्ध का नाम।

(४)

अमिताभ=(अमित है आभा जिसकी)। यह भी भगवान् बुद्ध का एक नाम है।

(५)

अतिवाद=किसी भी सिद्धान्त के सम्बन्ध में हद तक पहुँच जाना। मध्यपथ=भगवान् बुद्ध का बताया हुआ अति से रहित बीच का मार्ग (Golden mean). जलद-स्वरमंद्र (जलद=बादल; स्वर=शब्द; मन्द्र=गंभीर)=बादलों का गंभीर गर्जन।

जागरण गीत

विभावरी=रात्रि। अम्बर=आकाश। किसलय=(किशलय) नवीन, कोमल पत्ता। मुकुल=कली।

पं० सुमित्रानन्दन पंत

छाया

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दमयन्ती-सी·····सोई—[नल दमयन्ती को जंगल में पेड़ के नीचे सोती हुई छोड़कर चले गये थे]। विरक्ति-सी=सूखे पत्तों पर जंगल में

विरक्तों की भाँति सोने के कारण तुम विरक्ति की मूर्त्ति-सी मालूम पड़ती हो। मूर्च्छा-सी=मूर्च्छित के समान निश्चेष्ट होने के कारण तुम मूर्च्छा की मूर्त्ति-सी दिखती हो। विधुर=व्याकुल; दुःखी; अशक्त।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

द्रुपद-सुता-सी·····अज्ञात=जिस प्रकार अज्ञातवास करती हुई द्रौपदी (अज्ञात) छिपी हुई थीं।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

(पृष्ठ १०३)

संसृति=संसार। दिनकर-कुल में जन्म पा—[छाया की उत्पत्ति सूर्य के प्रकाश में होती है।]

मौन निमंत्रण

(पृष्ठ १०४)

विधुर-उर=व्यथित-हृदय।

(पृष्ठ १०५)

स्वर्णा=सुनहली (प्रातःकाल सूर्य की किरणें सुनहली रहती हैं)। भोर=प्रातःकाल। तुमुल=घोर; घना। तन्द्रा=वह अवस्था जब नींद तो लगती नहीं, किन्तु आलस्य के कारण उठने को जी नहीं होता। कनक-छाया में=प्रातःकाल के सुनहले प्रकाश में। सकाल=सवेरे। सुवर्ण-अवसान=(सुनहला अन्त) सुनहली संध्या। छाया-जग=अवास्तविक अस्तित्वहीन जग। फूँक देते छिद्रों में गान=मुरली के छिद्रों को फूँककर स्वरित कर देते हो; मेरे हृदय में कविता की तान भर देते हो।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

क्या गाऊँ

किन्नरियाँ=किन्नरों की स्त्रियाँ (किन्नर एक प्रकार के देवता होते हैं जिनका घोड़े का सा मुख होता है। ये गाने बजाने में प्रवीण होते हैं।) नूपुर=पैंजन; पैर में पहनने का एक आभूषण। मंजीर=घुँघरू।

तुम और मैं

(पृष्ठ १०८)

तुङ्ग=ऊँची। शृङ्ग=चोटी। चंचल-गति=अस्थिर; परिवर्त्तनशील। सुर-सरिता=गंगा। यहाँ दोनों के सम्बन्ध की ओर संकेत है। हिमालय गंगा का जन्मदाता है, वह अचल है और गंगा चंचल गतिवाली। विमल हृदय-उच्छ्वास=भावों का निर्मल उद्रेक। प्रेम=भक्ति। शांति=भक्ति द्वारा प्राप्त परमशांति अर्थात् मुक्ति। मतवाली भ्रान्ति=नशे की खुमारी जिसमें सुखद भ्रम होता है। खर-किरण-जाल=प्रचंड किरण-समूह। वर्षों का बीता वियोग=ऐसा वियोग जिसका स्मरणमात्र शेष है। पिछली पहचान (पिछली=बाद की; हाल की)=नई पहचान, अतः पूर्णतया परिचित। तुम योग और मैं सिद्धि=तुम परमात्मा में लीन होने के मार्ग हो और मैं उस मार्ग में आड़े आनेवाली सिद्धि जिसके वशीभूत होकर योगी अपना अभीष्ट भूल जाता है। वेणी काल नागिनी (वेणी=चोटी)=नागिन के समान काली चोटी, जो सदैव पीठ पर ही रहती है। झंकृत=झनकारा हुआ, बजाया हुआ। तुम कर·····रागिनी—तुम बजते हुए सितार हो और मैं उससे (विलग हुई अतएव विरहिणी) उत्पन्न रागिनी।

(पृष्ठ १०९)

निशीथ=रात्रि। तुम स्वेच्छाचारी·····ज़ंजीर=पुरुष और प्रकृति दोनों की सत्ता मानी जाती है; पुरुष स्वतन्त्र माना जाता है और प्रकृति पुरुष के अधीन। पुरुष साक्षीरूप से स्थित रहता है और प्रकृति सृष्टि का विधान करती है। यदि पुरुष न हो तो प्रकृति की कार्य-गति अवरुद्ध हो जावे। इसी कारण सृष्टि की स्थिति के लिए प्रकृति को स्वतन्त्र पुरुष का बन्धन माना जाता है—उसी का उल्लेख इस पंक्ति में किया गया है। शक्ति=दुर्गा; चण्डी। अचलाभक्ति=अटल भक्तिवाली। मदन पंच-शर-हस्त=हाथों में पंचबाण लिए हुए कामदेव। दिग्वसना (दिशाएँ हैं वस्त्र जिसके)=पृथ्वी। तुम चित्रकार घन-पटल श्याम=तुम चित्रकार के घनरूपी काले चित्रपट हो। मैं तड़ित्तूलिका-रचना=मैं उस पट पर बिजली की कूची से खिंची हुई लकीर हूँ। रणतांडव-उन्माद नृत्य=शिव का प्रलयकाल का संहारकारी तांडव नृत्य। (रण संहारकारी होता है।) वेद=चार वेद। नाद=शब्द। ओंकार=परमात्मा का सूचक शब्द।

कवि-शृङ्गार-शिरोमणि=काव्य का श्रेष्ठ शृङ्गार रस। तुम नाद वेद····· शिरोमणि=तुम वेद शब्दादिक के सार हो अर्थात् तत्वज्ञान हो (जो संसार को असार सिद्ध करता है और उससे अनासक्ति का उपदेश करता है) और मैं शृङ्गार रस हूँ (जो संसार के प्रति आसक्ति उत्पन्न करता है।) तुम यश···प्राप्ति=तुम कीर्ति हो (रूप और आकार विहीन हो) और मैं उस यश की प्राप्ति हूँ (तुम्हारी आधाररूप घटना हूँ)।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

(१)

"वीरों का कैसा हो वसन्त ?"

प्राची=पूर्व। अनंग=कामदेव। कंत=(कान्त) पति। मारू बाजे=युद्ध के बाजे (मारू=एक राग जो युद्ध के समय बजाया और गाया जाता है)। रंग=नाचना-गाना। दुरंत=अपार; कठिन। अतीत=व्यतीत; गत। हल्दीघाटी·····धमंड—हल्दीघाटी का महाराणा प्रताप और मुग़लों का युद्ध तथा शिवाजी की सिंहगढ़ विजय, जिसमें वीर तानाजी ने विजय और वीरगति प्राप्त की थी, प्रसिद्ध हैं। भूषण और चंद्र वीररस के प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, उनकी कविता पढ़ने से सचमुच शरीर में बिजली-सी दौड़ जाती है। हंत=खेद या शोकसूचक शब्द।

(२)

इसका रोना

वारोगे=निछावर कर दोगे। सिसकी=रोने में साँस के रुक-रुककर निकलने से जो आवाज़ निकलती है, उसे सिसकी कहते हैं। प्रकृति संगिनी=स्वाभाविक संगिनी।

(३)

मेरा नया बचपन

गीले गालों को=आँसुओं से भीगे हुए गालों को। नेत्र-नीर=आँसू। द्रुत=शीघ्र। आकांक्षा=अभिलाषा। प्राकृत=यथार्थ; स्वाभाविक। नन्दन-वन=इन्द्र का स्वर्गीय उद्यान। कौतूहल=खिलवाड़। विजय-गर्व=जीत का अभिमान। मंजुल=सुन्दर।

श्रीमती महादेवी वर्मा

वे दिन

वे दिन=बचपन के दिन जबकि बालक के सरल हृदय में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उत्पन्न हो सुख, दुःख, भय, आशंका आदि का संचार करती हैं। चातक का बालक मन=चातक का मनरूपी बालक। चित्रित पंखों की माया=रङ्गबिरङ्गी रेखाओं से युक्त पङ्खों का सौन्दर्य-धन। तितली पर करने छाया=तितली की रक्षा करने के लिये। [बालक को तितली बहुत प्रिय होती है।] जब अपनी·····रातें=कवियित्रीजी ताराओं को रोती हुई रातों के आँसू मानती हैं। प्रभात कालीन वायु-रात्रि की निश्वासें हैं= इनके निकलते ही (वहन होते ही) तारागण लुप्त होजाते हैं (पिघल जाते हैं) और रोना बन्द हो जाता है। गिन गिन·····पाँतें=यह मन उन आँसुओं की क़तार को भली भाँति गिनता और इकट्ठा कर रखता जाता था [रोती हुई रातों से सहानुभूति प्रकट करता था।] जो नव··· लाली=सूर्योदय काल में आकाश लालिमायुक्त दिखता है,, कवियित्रीजी की कल्पना में वह लालिमा लज्जा के कारण उत्पन्न होती है।

(पृष्ठ ११६)

मनबालशिखी=मनरूपी बालक मयूर। मुकुरमानस=मनरूपी दर्पण। स्मित का आँसू का विनिमय=हर्ष और विषाद का अदल-बदल, (कभी ख़ुश हो हँसता था, कभी दुःखित हो रोता था।

(पृष्ठ ११७)

ओरें=पहलू; बाजू; पार्श्व। वह सुषमा=प्रकृति का वह सौन्दर्य। विस्मृति=स्वार्थ और अभिमान की विस्मृति। अब मन के लघु बन्धन में=मन में अब अहंभाव की जाग्रति हो चुकी है उससे अब वह संकुचित होगया है।

(पृ० ११८)

अस्फुट=अस्पष्ट। अनन्त पथ=अहंभाव के कारण जीवन कठिनाई से कटता है; कंटकमय प्रतीत होता है, जल्दी नहीं समाप्त होता. अतः अनन्त प्रतीत होता है। निर्झर=झरने। यह साँसें·····झप जातीं=तारे (रात्रि के नेत्र) मुझ सोती हुई की साँसें गिनते रहते हैं (मुझे ही निहारते रहते हैं) और इस प्रकार थककर वे भी (प्रभात होते होते) सोने लगजाते हैं

(अस्त हो जाते हैं); रात्रि की आँखें लग जाती हैं। विरक्ति अंचल= विरक्ति का अंचल (अब मैं वह बालक नहीं जिसे प्रकृति से प्रेम था; अब मुझ में अपनापन समा गया है और उसने मुझे प्रकृति से विरक्त कर दिया है)। सौरभ समीर भर जातीं=सुगंधयुक्त वायु भर जाती है (सवेरे ताराओं का लोप हो जाता है और सुगन्धित वायु चलती है। कवियित्री-जी यहाँ यह बता रही हैं कि प्रकृति अब भी मुझे अपनी वही बालिका समझती है, यद्यपि मैं उससे पहले-जैसा प्रेम नहीं करती)। चिर सहचर= मेरे बाल्यकाल के संगी, प्राकृतिक दृश्य। एकाकीपन=अहंभाव के कारण उत्पन्न अकेलापन; शून्यता। निधियाँ=प्राकृतिक सौन्दर्य के ख़ज़ाने। कण-कण में बिखरी=मेरे प्रत्येक रोम में व्याप्त है (क्योंकि बाल्यकाल में मेरा उनसे प्रगाढ़ प्रेम था)।

अलि से

(पृ० ११६)

राह=प्रेम-पथ। साध=चाह। तरणी=नाव। पीर=विरह-पीड़ा। पिय.....पीर नहीं=विरह की पीड़ा प्रिय से कम मादक नहीं है (विरह में भी वही मादकता है जो प्रिय के मिलने में) जिसको मरुभूमि.....हुआ =चातक मेंह जल ही पीता है; अतः समुद्र भी उसे मरुभूमि मरुस्थल के बराबर है। मेघ-व्रती=मेघ का उपासक चातक। जो हुआ.....दीपक मय=पतंग, जिसने दीपक में गिर गिर कर अपने प्राण दे दिये। चकोर= चन्द्रमा और चिनगारियों का प्रेमी होता है। अनखाती नहीं=क्रोध नहीं करती; रुष्ट नहीं होती।

(पृष्ठ १२०)

निदाघ-सा दाह=ग्रीष्म ऋतु की सी गर्मी। मृगवारि=तृषित मृग को मरुस्थल में जो जल का मिथ्या आभास होता है; मृगतृष्णा। छलना= छल; धोखा। कुहू=अमावस्या की अँधेरी रात्रि।

पपीहे के प्रति।

कण=भिक्षा (प्रेम की भीख)। समाधि लगा=ध्यान कर; योग कर। पयोधर=बादल।

(पृष्ठ १२१)

निठुराई=निष्ठुरता। चुगता=खाता है।